प्रकाश की किरणें

पवित्रात्मा
स्वामी भोलानाथजी महाराज

इसी लेखक द्वारा

—:०:—

पयामे-मुहब्बत (उर्दू) कपड़े की जिल्द सहित २), सादी १)

पयामे-हक़ (उर्दू) ।)

मुहम्मद साहब की ज़िंदगी और नसीहत (उर्दू) ।)

प्रकाश की किरणें अंग्रेज़ी (Rays of light) हिन्दी १॥)

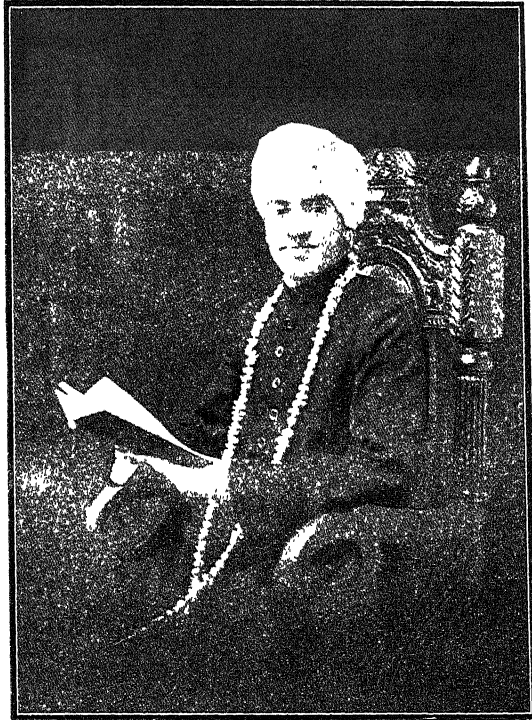
ज़हूरे-हक़ीक़त उर्दू २॥)

—:०:—

मिलने का पता—

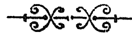
नवलकिशोर-प्रेस,

लखनऊ.



लेखक

प्रकाश की किरणें



लेखक

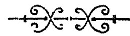
पवित्रात्मा स्वामी भोलानाथजी महाराज

(अखिल जगत् के सेवक)

संस्थापक ईश्वरीय प्रेमसभा

लेखक—'पयामे-मुहब्बत', इत्यादि

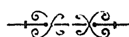
کارے بغیر عشق نداریم در جہان
عشق است کا رما وبدین کار آمدیم



In this world I have no
purpose except Love.
My work is Love and my
Mission is Love.

Printed by K. D. Seth, at the N. K. Press, Lucknow.

प्रकाश की किरणें



कपड़े की जिल्द

काग़ज़ की जिल्द

कपड़े की जिल्द विदेश में



स्वामीजी का स्थायी पता—

माफ़ंत मिस्टर आर. आर. खन्ना

रजिस्ट्रार लखनऊ यूनीवर्सिटी,

लखनऊ (हिन्दोस्तान)

विषय-सूची

माता सरस्वती

के

चरणों

में

अत्यन्त श्रद्धा और प्रेम सहित

समर्पित

लेखक के हृदय के

सभी सद्भाव

माता सरस्वती की कृपा से

अंकुरित हुए हैं

ॐ

प्रस्तावना।

श्री १०८ स्वामी भोलानाथजी महाराज, "नाथ", "गुलाम-रुए-ज़मीन" (अखिल जगत् के सेवक)।

मेरे देवगुरु, श्रीस्वामी भोलानाथजी महाराज, जगद्गुरु हैं और जिन लोगों को उन्होंने स्वयं अपने आपको प्रकट कर दिया है वे उन्हें ऐसा ही मानते भी हैं। मेरे लिए उनका वर्णन करना इसी प्रकार की धृष्टता है जैसी दीपक लेकर सूर्य को प्रकट करने की चेष्टा। किंतु कदाचित् चमकता हुआ सूर्य धुँधले शीशे की आड़ से अधिक सरलता से देखा जा सकता है। मेरा ऐसा पापी एक धुँधला शीशा है। इसी भाव को लेकर यह कुछ पंक्तियाँ लिखी गई हैं।

स्वामीजी महाराज देवता हैं और शीघ्र ही सारा संसार उन पर घमंड करेगा। वे प्रेम का अवतार

हैं और ईश्वरीय प्रेम का ऐसा जीता-जागता स्रोत है, जिससे कि सभी स्वच्छन्दतापूर्वक अपनी प्यास बुझा सकते हैं। वे परम-प्रेमी ईश्वर का ही साकार-रूप हैं, तो भी उनसे मिलने पर, उनकी उत्कृष्ट नम्रता, उनका अनुपम शील और उनका छलकता हुआ प्रेम आपको सराबोर कर देगा। वे अपने को "गुलाम-रूए-जमीन", अर्थात् अखिल जगत् का सेवक, मनुष्यमात्र का दास कहते हैं। आप देखेंगे कि उनके व्याख्यान और लेख प्रेम के रंग में तर-बतर होते हैं। आध्यात्मिक जीवन से हीन मृतप्राय चित्तों में वे पुनः प्राण फूँकते हैं। जो हृदय भौतिक जीवन और जड़ जगत् के निरंतर संसर्ग से कठोर हो गए हैं, वे उनके लेखों और व्याख्यानों से पिघल जाते हैं। स्वामीजी की व्यक्तिगत शोभा और सौम्यता सब धर्मों और सम्प्रदायों के माननेवालों को आकर्षित कर लेती है और आकर्षित करके प्रेम के बंधन में बाँध रखती है। स्वामीजी के उप-

देशों में धार्मिक पक्षपात का कहीं लेश भी नहीं रहता—वे सभी धर्मों के लिए एक से होते हैं। उनकी अध्यात्मशक्ति का पूरा वर्णन करना और पूर्णतया समझना मानव-सामर्थ्य के परे है।

चिरकाल से मैं प्रार्थना करता रहा हूँ—"हे भगवन्, एक बार कृपा करके मुझे मनुष्यरूप में दर्शन दीजिए; मेरे लाखों बार शिर नवाने को सफल कीजिए।" मेरी यह प्रार्थना स्वीकृत हो गई और भगवान् प्रेम का अवतार धरकर आ गए। अब मुझे उनके पवित्र चरणों में दो वर्षों से अधिक बैठने का दुर्लभ सौभाग्य प्राप्त हो चुका है और मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि सत्य का कोई सच्चा जिज्ञासु या ईश्वर-प्रेमी इस द्वार से विमुख नहीं लौट सकता, चाहे वह किसी धर्म का माननेवाला क्यों न हो और उसकी अपनी योग्यता कितनी भी हो। जो लोग सच्चे हृदय से अपने उद्धार के लिए, जगत् में, ईश्वर के अवतार की प्रतीक्षा कर रहे थे और

जिन्होंने उसके विरह का संताप सहा है, उन्हें स्वामीजी के दर्शन होते ही, बिना एक भी शब्द बोले, शांति और प्रेम का संदेश मिल जायगा। ऐसे लोग आवें और शांति तथा प्रेम का संदेश प्राप्त करें।

स्वामीजी की विख्यात उर्दू पुस्तक "पयामे-मुहब्बत" (प्रेम-संदेश) का अंग्रेजी और हिन्दी में अनुवाद हो रहा है और आशा है कि वे शीघ्र ही प्रकाशित हो जायँगे। पर कोई भी पुस्तक गुरु की वाणी और व्यक्तिगत संसर्ग का स्थान नहीं ले सकती और फिर जगद्गुरु के संसर्ग का तो कहना ही क्या है! इन छोटे-छोटे लेखों में, (जो अंग्रेज़ी में "Rays of Light" के नाम से छपे हैं और हिन्दी में "प्रकाश की किरणें" के नाम से छपेंगे।) इतनी चिनगारियाँ हैं कि जिनसे उन लोगों के हृदयों में अग्नि भड़क उठेगी जो कि सच्चे हृदय से ईश्वरीय जीवन से संसर्ग चाहते हैं, चाहे उन्होंने अभी तक दीक्षा न भी ली हो। पुराने

प्रेमियों को नया उत्तेजन मिलेगा—इस उत्तेजन से उस समय तक उनका काम चल जायगा, जब तक कि वे स्वामीजी से मिलकर स्वयं "संदेश" न प्राप्त करें।

इस पुस्तक को छापने का उद्देश्य है—सबको निमंत्रण देना कि आइए और आध्यात्मिक जीवन का आनंद प्राप्त कीजिए; निमंत्रण देना उन लोगों को, जिन्हें सांसारिक जीवन की चिंताओं ने काफ़ी सताया है और जो अब शक्ति और चित्त की शांति चाहते हैं; निमंत्रण देना उन लोगों को, जिनके हृदय पीड़ित और घायल हैं, वे आवें और ईश्वरीय जीवन से योग प्राप्त करके इसी धरती पर शांति और सुख से रहें और फिर अपना जीवन प्रेम, श्रद्धा तथा सेवा करते हुए व्यतीत करें।

—रामरत्न खन्ना,
रजिस्ट्रार, लखनऊ विश्वविद्यालय,
नं० १, राय प्रयागनारायण रोड,
लखनऊ।

ईश्वरीय प्रेम-सभा

सुखसमाचार और बधाइयाँ।

"मेरे दोस्त ने मेरे गले में जंजीर डाल दी है और जहाँ चाहता है मुझे ले जाता है।"

"ईश्वर विश्व की आत्मा है और विश्व उसका शरीर है—इसी सत्य का नाम आस्तिकता है, बाक़ी सब दम्भ है।"

क्योंकि मैं ईश्वर की आज्ञानुसार मनुष्यमात्र को अपना सगा भाई समझता हूँ, चाहे वह किसी धर्म या जाति का क्यों न हो, इसलिए मेरे भाइयो, मैं आपको यह उत्तम तथा शुभ समाचार सुनाता हूँ, और उसके लिए बधाई भी देता हूँ कि ईश्वर ने अपनी कृपा और दया से मुझे मनुष्यमात्र की सेवा करने के लिए अखिल जगत् का सेवक (ग़ुलाम-रूए ज़मीन) बनाया है। इसी प्रकार अपने प्रसाद-स्वरूप वह अब मुझे अपनी असीम शक्ति से असा-

धारण, अलौकिक और आश्चर्यजनक बल प्रदान करेगा, जिससे कि यह अखिल जगत् का सेवक जी-जान से संसार की सेवा में लग जायगा। इसका फल यह होगा कि संसार के सारे दुःखों और कठि-नाइयों का अन्त हो जायगा।

ईश्वर के सब अवतारों, पैगम्बरों, ऋषियों, महा-त्माओं, मुनियों, फ़क़ीरों और दूसरे सिद्ध व्यक्तियों ने भूतकाल में जो बीज मनुष्यमात्र के आध्यात्मिक और लौकिक लाभ तथा सुख के लिए बोया था, वही ईश्वर की दया से बढ़कर मनोवांछित फला-फूला वृक्ष हो गया है।

यह गुलाम-रूए-ज़मीन (अखिल जगत् का सेवक) ईश्वर की इच्छानुसार इस वृक्ष के फल सारी मनुष्य जाति को खिलाएगा। इस फल के खाने का यह पवित्र परिणाम होगा कि हरएक भाई दूसरों के दुःख-सुख, हानि-लाभ को अपना-सा दुःख-सुख और हानि-लाभ समझेगा, चाहे वह दूसरा किसी धर्म

या किसी जाति का क्यों न हो। इस फल के खाने का यह नतीजा होगा कि वह सबके साथ इस तरह से प्रेम करेगा, जैसा कि इस समय प्रत्येक मनुष्य अपनी स्त्री, बच्चे, माता, पिता आदि निकट सम्बन्धियों के साथ करता है। इतना ही नहीं, हरएक भाई दूसरों पर ऐसा सच्चा और हार्दिक प्रेम रक्खेगा, जैसा इस समय उसे अपने आप से है। फिर हरएक भाई की ईश्वर की सत्ता में पूरी श्रद्धा हो जायगी। इसके फलस्वरूप हरएक मनुष्य ईश्वर को अपना सच्चा पिता मान लेगा और मनुष्यमात्र को अपना सगा भाई मानेगा। वह यह समझेगा कि हम सब विश्वरूपी घड़ी या एक ही बड़ी मशीन के पुर्ज़े हैं।

इसके अतिरिक्त मुझे एक और शुभ संवाद देना है, वह यह कि मैं ही पहला आदमी हूँ, जिसने कि ईश्वर की दया से, और उसकी ही आज्ञानुसार उसके ही धर्म में सारी मनुष्य-जाति को भरती कर लिया है। मेरे विचार में इस संसार में अब एक

भी व्यक्ति ऐसा नहीं रह गया, जिसने कि मेरे सच्चे धर्म को स्वीकार न किया हो या जिसके धर्म को मैंने स्वीकार नहीं किया है।

यह बात आपको अचंभे में डाल देगी। कदाचित् आप कहेंगे कि यह भाई ऐसा दावा कर रहा है, जो कि असंभव है, परन्तु ईश्वर की आज्ञानुसार मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आप स्वयं बहुत जल्द देखेंगे कि कोई मुसलमान भाई किसी को मुसलमान बनने के लिए नहीं कहेगा। इसी तरह से, कोई ईसाई भाई किसी से यह नहीं कहेगा कि तुम ईसाई हो जाओ। यहाँ तक कि किसी भी धर्म का माननेवाला (चाहे वह हिन्दू, आर्य, सिख, जैन आदि कोई भी क्यों न हो) किसी दूसरे धर्म के माननेवाले से यह नहीं कहेगा कि वह अपने वर्तमान धर्म को छोड़ दे या किसी अन्य धर्म को ग्रहण कर ले। किन्तु आप जानते हैं कि यह तभी हो सकता है, जब ईश्वर की दया से केवल एक

ही सच्चा और असली धर्म सारे संसार में प्रचलित हो, जिसमें कि ईश्वर की यह आज्ञा हो कि हरएक मनुष्य सारे मनुष्यों और पशुओं के साथ भी ऐसे सद्भाव और प्रेम से व्यवहार करे, जैसा कि वह स्वयं अपने से करता है, या चाहता है कि दूसरे उसके साथ करें, और कोई आदमी किसी दूसरे के साथ ऐसा व्यवहार न करे, जैसा कि वह दूसरों से अपने साथ नहीं चाहता। "दूसरों के लिए ऐसी बात मत चाहो जो तुम अपने लिए नहीं चाहते हो।"

मुझे आगे यह कहना है कि ईश्वर ने इस 'गुलाम-रूए-ज़मीन' (अखिल जगत् के सेवक) को ऐसी पवित्र और रामबाण औषधि दी है कि जिससे सारे शारीरिक और आध्यात्मिक रोग अच्छे हो सकते हैं। ईश्वर को लगातार स्मरण करने से या बराबर प्रार्थना करने से सारी बीमारियाँ अच्छी हो सकती हैं। इसलिए जो भाई इस "गुलाम-रूए-ज़मीन" के कहने के अनुसार इस पवित्र दवा को खायेगा, वह

ईश्वर की दया से शारीरिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य को प्राप्त करेगा, उसे इस लोक के सब प्रकार के भय से और परलोक की आशाओं से छुटकारा मिल जायगा। आगे, जब वह इस शरीर को छोड़ेगा तो वह जन्म-मरण के कष्ट और दुःख से छूट जायगा और उसे आनन्ददायक सायुज्य मोक्ष, ईश्वर में मिल जाने का परमसुख प्राप्त होगा। ऋग्वेद में एक मन्त्र है जिसका सारांश यह है—

"सब वेदों का उत्कृष्ट उद्देश्य यह है कि लोग समझ जायँ कि ईश्वर सर्वव्यापक और अनन्त है और सारा विश्व, चन्द्र, सूर्य्य और तारे उसी में स्थित हैं।"

जो व्यक्ति ब्रह्म, ईश्वर को नहीं समझ पाता, उसे वेदों से क्या लाभ ? कुछ भी नहीं। जो वेदों को पढ़कर धर्मात्मा योगी हो जाता है और ब्रह्म को जानकर उससे अपना संबंध जोड़ लेता है वही परमानन्द को प्राप्त करता है, जिसका नाम मोक्ष है।

"ईश्वर के प्रति श्रद्धा जिसके हृदयतल तक पहुँच गई है, उसने अपने मस्तिष्क के प्रकाश के लिए सारे ज्ञान का तत्त्व प्राप्त कर लिया है। जहाँ पहले उसके मन में सदा भय बना रहता था, वहाँ अब असीम निर्भयता व्याप रही है (यह महान् परिवर्तन है)। ब्रह्म से वह उत्पन्न हुआ था और ब्रह्म ही में वह लीन हो जाता है।"

मेरे भाइयो, इन समाचार और बधाइयों को सुनकर आपको अपने अन्तःकरण से परमेश्वर को धन्यवाद देना चाहिए। अब हम सबका यह कर्तव्य है कि इन सुखसमाचार और आशीर्वादों को अपने मित्रों और संबंधियों, जान-पहचानवालों और अनजानों तक पहुँचा दें, जिससे कि वे भी ईश्वर को उसकी दया और कृपा के लिए धन्यवाद दे सकें। आगे मुझे यह कहना है कि ईश्वर की असीम और अपार कृपा से न मुझे जीवन की इच्छा है और न मृत्यु का भय है। न मुझे स्वर्ग की लालसा है

और न नरक का डर; न मैं मोक्ष की प्रार्थना करता हूँ और न बन्धन से डरता हूँ।

इसलिए मेरा जीवन, मेरी मृत्यु, मेरी प्रार्थना, मेरे सोते रहने का समय, मेरे जागते रहने का काल, मेरा भोजन, मेरा पान, यहाँ तक कि मेरी सब हरकतें (गति) भीतरी और बाहरी, देख पड़नेवाली और न देख पड़नेवाली, शारीरिक अथवा आध्यात्मिक आदि, मेरा सब कुछ केवल ईश्वर के लिए ही है।

ओ३म् तत्सत्।

—स्वामी भोलानाथ,
गुलाम-रूए-ज़मीन
(अखिल जगत् का सेवक)।



हमें किस चीज़ की ज़रूरत है ?

और

वह हमको कैसे मिल सकती है ?

(१) हमें किस चीज़ की ज़रूरत है ? (२) जो चीज़ हम चाहते हैं वह कहीं है भी या नहीं ? (३) यदि है, तो कहाँ है और हमें कैसे मिल सकती है ?

जब हम अपने अन्तःकरण की ओर ध्यान देते हैं (अपनी मनोवृत्ति अंतर्मुखी करते हैं) तब हम एक ऐसा शब्द सुनते हैं, जो अवच्छिन्न और नित्य प्रतीत होता है ।

यह आवाज़ कहती है—"कहाँ है प्रसन्नता, सुख या आनंद ? शांति कैसे मिल सकती है।" यह वह प्रश्न है, जोकि प्राय: हम सभी के मन में बहुधा उठा करता है । मैंने "प्राय:" शब्द का इसलिए प्रयोग किया कि जिन्होंने ईश्वर (या आत्मा) का अनुभव कर लिया है, वे इस प्रश्न से भी मुक्ति पा गए हैं ।

जब हम इस परमानंद की खोज में दौड़ना आरंभ करते हैं, तो पहला प्रश्न हमारे मन में यही उठता है—"वह कहीं है भी या नहीं ?" और यह प्रश्न हमें बहुत चक्कर में डाल देता है । हम आनंद की खोज में पहले तो बाहरी संसार की ओर ध्यान दौड़ाते हैं, जैसे सिनेमा, थिएटर और प्रति दिन के जीवन से सम्बन्ध रखनेवाले अन्य साधारण विषय ।

कुछ समय के बाद हम कहने लगते हैं कि "हमें अमुक वस्तु अथवा आमोद-प्रमोद से बहुत सुख

मिला। जैसे—आज सायंकाल मैं बोलता हुआ सिनेमा देखने गया था और उसमें बड़ा मज़ा आया।" परंतु यह विचार भ्रमात्मक है, वैसा ही भ्रमात्मक, जैसा कि उस कस्तूरी मृग का विचार जो अपनी ही नाभि में तो कस्तूरी लिए रहता है और उसकी सुगन्धि से सारे वन को सुवासित रखता है, परन्तु जो कहता है—देखो! यहाँ कैसी सुखकारक सुगन्धि है। इस भूल का प्रमाण हवा के रुख़ बदलने से मिलता है, जिसका फल यह होता है कि जंगल का वह भाग जो कुछ देर पहले महक रहा था, अब उस सुंदर सुगंधि से रहित होजाता है। कस्तूरी मृग तब फिर सुगंधि की खोज में इधर-उधर दौड़ने लगता है; कुछ समय के बाद वह ऐसे स्थान पर फिर पहुँच जाता है जहाँ की हवा में उसही की नाभि से निकली हुई सुगंधि बस जाती है। जीवन के बाहरी विषय ठीक इसी तरह सुख देते हैं। जब तक कोई एक चीज़ हमारे पूरे

ध्यान को अपने में लगा रखती है, या हमारे सारे विचारों को अपने ही में बाँध रखती है, तभी तक हमें उससे मज़ा मिलता है । ज्योंही कोई विक्षेप डालनेवाला कारण उपस्थित हुआ और उसने इस संबंध में अड़चन डाली, बस उस चीज़ से सुख मिलना भी बंद हो गया । हम फिर सुख की खोज में दूसरी ओर लपकते हैं और जीवन के अन्य पदार्थों में उसे खोजने लगते हैं किंतु सुख के लिए सारी कशमकश और दौड़-धूप यह सिद्ध करती है कि सुख या आनंद कहीं है ज़रूर । यदि सच्चा सुख कहीं होता ही नहीं, तो फिर हमें उसकी कभी ज़रूरत ही क्यों मालूम होती है । सुख के लिए हमारी अदम्य आकांक्षा ही स्वयं अनंत सुख की सत्ता का प्रबल प्रमाण हैं । यदि कोई नास्तिक अनंत आनंद की सत्ता से इनकार करे तो उससे यह पूँछा जा सकता है कि फिर प्रकृति ने हर एक मनुष्य के हृदय में सुख और भोग की सार्वभौमिक

इच्छा ही क्यों उत्पन्न की ? यदि उसका यह उत्तर हो कि प्रकृति ने इस मामले में भूल की है, तो फिर हमारी इंद्रियाँ और भौतिक पदार्थ भी जिनको हम अपनी इंद्रियों द्वारा देखते या जानते हैं, विश्वास के अयोग्य हैं। यदि यह इंद्रियाँ, और वे भौतिक पदार्थ जो उन्हें संतुष्ट करते हैं, विश्वास के योग्य हैं, तो फिर वह महान् उद्देश्य ही झूठा कैसे हो सकता है ? जैसे कि भौतिक पदार्थ हमारी इंद्रियों के संतुष्ट करने के लिए हैं, ठीक वैसे ही (निस्संदेह) अनंत आनंद भी है, जिससे कि हमारी सुख, प्रसन्नता और आनंद की पिपासा शांत हो सकती है।

हम संसार की वस्तुओं से इसलिए प्रेम करते हैं कि हम को उनसे आराम मिलता है। मुक्ति भी एक भयानक ही वस्तु हो जाय यदि उसमें परमानंद का आस्वादन न हो। यदि कोई कहे कि मैं सुख या प्रसन्नता नहीं चाहता, तो फिर हमें यह समझना

चाहिए कि वह व्यक्ति दुःख और कष्ट चाहता है। दुःख और कष्ट तो बहुत सस्ते मिल सकते हैं, परंतु वास्तव में कोई उन्हें चाहता नहीं। सांसारिक सुख की इच्छा करने का मतलब है, एक प्रकार से कष्ट को बुलाना। इसीलिए महात्माओं के जीवन के उद्देश्य या लक्ष्य इससे (सांसारिक सुख से) परे होते हैं। वे चाहते और खोजते हैं, अनंत आनंद और ईश्वरीय प्रेम।

भिन्न-भिन्न धर्मों और मतों के माननेवाले एक ही वस्तु की भिन्न-भिन्न रूप से पूजा करते हैं। जैसे पतंग दीपक से प्रेम करता है, बुलबुल गुलाब के फूल पर मरती है। ये दोनों (और सब ही) सौंदर्य (खूबसूरती) की उपासना करते हैं। महात्मा उस महान् सत्य में ही सौंदर्य को देखते हैं और इसलिए वे उसके सब रूपों में उससे प्रेम करते हैं। वे उसके प्रेम, सौंदर्य या आनंद में ऐसे मस्त हो जाते हैं कि सांसारिक झंझट और

शारीरिक कठिनाइयों से उत्पन्न संकट स्वयं दब जाता है। अनेक कठिनाइयों को झेलने पर भी महाराज युधिष्ठिर ईश्वर का स्मरण करते रहे। जब महारानी द्रौपदी ने पूछा "क्या अब भी आप उसी का ध्यान करते हैं?" तो उन्होंने केवल इतना ही कहा, मैं उससे इसलिए प्रेम करता हूँ कि वह पूर्ण सौंदर्य है, क्योंकि वह अनंत आनंद है।

प्राचीन काल में भी पतंगे दीपक पर और बुलबुल गुलाब के फूल पर मोहित थे। अब भी वे उन्हीं अपने प्रेमपात्रों पर आसक्त हैं। पर यह मनुष्य का दुर्भाग्य है कि वह अपने सत्य का ध्यान छोड़ बैठा है, उसने अपने प्रेमपात्र को खो दिया है।

सुख से हमारे निरंतर प्रेम का एक प्रमाण यह भी है कि यदि किसी को यह निश्चय हो जाता है कि अब संसार में उसको सुख नहीं मिलेगा तो वह अपने प्राण देने के लिए तैयार हो जाता है। इस

लिए यह सिद्ध होता है कि सुख या आनंद की सभी लोग इच्छा रखते हैं ।

अच्छा अब यह देखना है कि "आनंद" कहाँ और किन दामों पर मिल सकता है ।

जो वस्तुएँ मनुष्य के जीवन स्थिर रखने के लिए परमावश्यक हैं; उनमें तीन गुण ज़रूर होने चाहिए । वे बहुत सी (विना दाम की) हों और हर जगह पर और हर समय में मिल सकनेवाली हों । सुख मनुष्य के जीवन के लिए परमावश्यक है, इस लिए उसमें भी ये तीनों गुण होने चाहिए । संसार की वे चीज़ें, जिनकी वास्तव में आवश्यकता नहीं है, कहीं कहीं, बड़ी कठिनाई से और महँगी मिलती हैं, जैसे जवाहिरात, हीरे आदि । "आनंद" या उस "महान् सत्य" के लिए भी ये तीनों गुण आवश्यक हैं । आनंद का दूसरा नाम है—राम, अल्लाह या ईश्वर । उससे हमारा सदैव और निरंतर संबंध इसीलिए है कि वह हर स्थान में है । फिर प्रश्न उठता है कि

"यदि वह सब जगह है तो वह हमको अपने पास या साथ मालूम क्यों नहीं होता?" संक्षेप में मेरा उत्तर यह है—"आप मेरा व्याख्यान सुनते समय बराबर साँस लेते रहे हैं। क्या आपको अपने साँस लेने का ज्ञान रहा है? यदि नहीं, तो क्यों नहीं?" आप बहुत करके कहेंगे कि "हमारा ध्यान तो तुम्हारी ओर था।" आपके प्रश्न का मेरा भी यही उत्तर है। जिस प्रकार बाहरी चीज़ों के ध्यान में लगे रहने से आपको अपना साँस लेना जान नहीं पड़ता, इसी प्रकार भौतिक जीवन के बंधनों और झंझटों में पड़कर आपको उस महान् सत्य का ज्ञान नहीं रहता—जो महान् सत्य आपके जीवन का आधार है और जो हर समय आपके साथ रहता है। जैसे आप कुछ देर के लिए व्याख्यान से ध्यान हटाकर अपने सांस लेने को जान सकते हैं, वैसे ही आप जीवन के बाहरी पदार्थों से ध्यान हटाकर, उनसे अलग होकर, उस

सत्य का आभास पाना आरंभ कर सकते हैं । जैसे जीवन भर हमारी साँस चलती रहती है, वैसे ही वह सत्य भी सदा हमारे साथ रहता है । हमें उस सत्ता को उत्पन्न नहीं करना है, किंतु उसे अपने ज्ञानक्षेत्र के भीतर लाना है । जब हम इस लोक और परलोक का ध्यान करना छोड़ देते हैं, तब उस सत्य का आभास मिलने लगता है । यह स्पष्ट ही है कि जीवन की सारी आवश्यक वस्तुएँ सभी काल में मिलती रहनी चाहिएँ । जीवन के लिए ईश्वर की अनिवार्य आवश्यकता है, बस इसीलिए वह हर समय मिल सकता है । हम उसकी सत्ता से इनकार नहीं कर सकते, क्योंकि विना उसके स्वयं हमारी ही सत्ता नहीं रह सकती । यों तो यह वस्तु (ईश्वर, परमात्मा, सत्य) विना मूल्य मिलती है, पर उसकी प्राप्ति के लिए हमको अपने अहंकार की बलि देनी पड़ती है । उसी अहंकार की जिसके द्वारा हमारी आत्मा में भी गति उत्पन्न होती है ।

ईश्वर परमानंदरूप है, इस लिए उसकी सत्ता अवश्य होनी चाहिए। यह आनंद असीम है, इस लिए उसकी सत्ता भी असीम ही होनी चाहिए। असीम सत्ता और असीम आनंद ज्ञानरहित नहीं हो सकते। अच्छा तो फिर हम चाहते क्या हैं? सत्ता, ज्ञान, आनंद, जिनके पर्यायवाची शब्द हैं अल्लाह, ईश्वर, वाहगुरु; वही राम भी है। अच्छा, इस ज्ञान का प्रभाव हमारे जीवन—दैनिक जीवन—पर क्या पड़ता है? जब हम को यह ज्ञान अच्छी तरह से हो जाता है और दृढ़ विश्वास भी हो जाता है कि—

एक महान् सत्ता है,

वह सर्वज्ञ है,

वह सर्वशक्तिमान् है; और

वह सर्वव्यापी होकर हर स्थान में और हर समय में उपस्थित है, तो फिर हमारे जीवन से बुराइयाँ भाग जाती हैं, जीवन शुद्ध हो जाता है।

फिर हमको किसी प्रकार की हानि का भय नहीं रहता, हम निर्भय हो जाते हैं।

उदाहरण के लिए मैं एक कहानी कहूँगा—

एक भेड़ जंगल में मार्ग भूल गई और उसको बड़ा भय मालूम होने लगा; सब ओर से हानि की आशंका थी, क्योंकि सारे शिकारी जानवरों के लिए वह एक स्वादिष्ठ भोजन थी। भेड़ तो अत्यंत निर्बल और असहाय पशु है ही, सभी उसे हड़प कर सकते हैं। ऐसे समय में उसे एक विचित्र उपाय सूझ पड़ा। वह दौड़ कर सिंह की माँद के सामने बैठ गई। उसने विचार किया—

"इस जंगल में मार तो डाली ही जाऊँगी, क्योंकि मैं सबसे निर्बल पशु हूँ और सारे जानवर मेरा मांस बड़े स्वाद से खाते हैं। अच्छा, जब मुझे मरना ही है तो फिर सिंह के हाथ से मरने की क्यों न कोशिश करूँ? यदि किसी कारण से मुझे सिंह ने न मारा, तो और कोई जानवर मुझे

छूने का साहस न करेगा। और फिर मुझे आशा है कि वन का राजा शक्तिशाली सिंह मेरे जैसे निर्बल पशु को मारने का तुच्छ काम न करेगा, विशेष कर जब कि मैं उसके द्वार पर, उसकी शरण में रक्षा के लिए जाती हूँ।"

वह भेड़ सिंह की माँद के सामने बहुत देर तक बैठी रही, बहुत से शिकारी जानवर उधर से निकल गए, पर उसे छूने का साहस न कर सके। सभी ने विचारा—

"अपने आप तो कोई सिंह के मुँह में जाता नहीं, फिर यह निर्बल और डरपोक भेड़ अपना बलिदान क्यों कर रही है? हममें तो इतना साहस है नहीं? ऐसा मालूम होता है कि सिंह ने ही इसे अपनी माँद के सामने बिठा रखा है। यदि हम इसे हानि पहुँचाएँगे, या हानि पहुँचाने का विचार भी करेंगे, तो सिंह हमसे क्रुद्ध हो जायगा और जंगल से निकाल देगा। तब फिर केवल हम

ही नहीं, वरन् हमारे संबंधी भी जंगल से निकाल बाहर किए जाएँगे।"

हर एक हिंस्र पशु ने भूखे भाव से इस कमज़ोर भेंड़ को देखा और जल्दी ही खिसक गया। जब सिंह अपने माँद से निकला, भेंड़ उठी, शिर नीचा झुकाया और उसी की ओर बढ़ी। परंतु सिंह ने उसे हानि नहीं पहुँचाई।

विचारिए, यह भेंड़ सारे हिंस्र पशुओं से इस लिए अभय हो गई कि उसने वनराज सिंह के सामने अपने आपको भेंट किया। इसी प्रकार से यदि हम सच्चे हृदय से अपने आपको उस महान् सत्ता को पूर्णतया समर्पित कर दें, तो फिर कभी हमको कोई खटका या डर न रह जायगा।

दूसरा उदाहरण लीजिए—

शून्य, बिंदी (०) स्वयं कुछ मूल्य नहीं रखती, किंतु जब वह अपना संबंध एक (१) से जोड़ लेती है, तो वह दस १० हो जाती है। यदि वह

अपनी हीनता और असारता फिर स्वीकार करे और एक और बिंदी बढ़ा दी जाय तो दस से बढ़कर सौ १०० बन जाती है।

इसी प्रकार से अपने मन में अपनी तुच्छता का विचार करने से हम अनंत बन सकते हैं। इसी तरह त्याग का अभ्यास करके क्या हम असीम सत्ता को नहीं प्राप्त कर सकते? क्यों नहीं? यदि कोई व्यक्ति ईश्वर को अपने मन से या ज्ञान से पकड़ना चाहे तो वह शीघ्र ही उसके मस्तिष्क से खींच कर बाहर निकाला जा सकता है। परंतु यदि ईश्वर को अपने हृदय में स्थापित कर लिया जाय, तब फिर वहाँ उसका स्थायी मंदिर बन जाता है।

जैसे एक बालक, गिरने पर, अपनी माता को सहायता के लिए रोकर पुकारता है, वैसे ही, और उतनी ही श्रद्धा से, हमको अपने मालिक को पुकारना चाहिए। यदि कोई बालक केवल माता का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए

रोता है तो माता भी, गृहस्थी के कामों में फँसी होकर और यह जानकर कि बच्चे को उसकी वास्तविक आवश्यकता नहीं है, टाल देती है और बालक की ओर नहीं झुकती। किन्तु जब बालक सचमुच रोता है और सच्ची लगन से माता को पुकारता है, तो वह अन्य कामों को छोड़कर उसे अपनी गोद में उठा लेती है।

इसी प्रकार से सच्ची लगन से हमको अपनी महती माता को पुकारना चाहिए। ऐसा भला कभी हो सकता है कि प्रेममयी माता अपने बालक की सच्ची पुकार न सुने और उसका कष्ट न दूर करे। हमको सदा अपनी माता में श्रद्धा रखनी चाहिए और तब हमारे सारे प्रयत्न सफल होंगे।

ओम् शम्।

सफलता का रहस्य

हम सबकी एक आत्मा है। आत्मा शरीर से भिन्न है। जब मैं गहरी नींद में सोता हूँ तो शरीर का ज्ञान नहीं रहता। जागने पर कहता हूँ कि मैं खूब सोया। यह "मैं" शरीर से भिन्न कोई वस्तु है। "मैं" केवल शरीर नहीं है। आत्मा प्रकृति से भिन्न है। आधुनिक विज्ञान आत्मा का पता नहीं लगा पाया है। आत्मा को देखने के लिए किसी और औजार की आवश्यकता है और वह औजार बहुत सूक्ष्म होना चाहिए। "ज्ञाता" (जाननेवाले) को कैसे जाना जाय। सब महात्माओं और धर्मों के संस्थापकों ने कहा है कि आत्मा है। नास्तिकों ने अधिक से अधिक यह कहा है कि "हम" "आत्मा" जैसी किसी वस्तु को नहीं जानते, परंतु उसका होना संभव है। हम उसको जानते नहीं हैं। ऐसी अनेक चीजें हैं, जिनको

हम नहीं जानते, हम उनके अस्तित्व को अस्वीकार नहीं करते। क्या हमने अपनी "आत्मा" को प्राप्त करने का उद्योग किया है? यदि नहीं, तो फिर उनसे पूछिए, जिन्होंने ऐसा उद्योग किया है। पानी की हर एक बूँद का ध्येय समुद्र है। ओस के कणों को देखिए। हम प्रातःकाल पानी की बूँदें घास पर देखते हैं। १० बजे तक जब कि सूर्य चमकता है, वे बूँदें भाप बनकर हवा में मिल जाती हैं। हवा उन्हें ऊपर आकाश में या पहाड़ों के पास ले जाती है। वे बूँदें मेंह बनकर बरसती हैं। और नदी नालों में होती हुई समुद्र को फिर वापस जाना चाहती हैं, यदि बीच में ही वे फिर किसी काम में न लगा ली जायँ। उनका ध्येय समुद्र है।

दीपक की लौ आकाश की ओर उठती है। सूर्य उसका ध्येय है। मनुष्य की आत्मा का भी एक ध्येय होना चाहिए। वह ध्येय परमात्मा है। हम सभी को उसी ध्येय तक पहुँचना है। इस संसार

की हर एक वस्तु काँप रही है, हिल रही है, या अस्थिर है। हम शांति और स्थिरता के लिए कभी कोई चेष्टा करते हैं, कभी कोई। पर यह सब चेष्टाएँ एक शिक्षा देती हैं। शांति कहीं और है। पतंगा दीपक को चाहता है। ज्यों ही दीपक जलाया जाता है वह अपना ध्येय जान जाता है। उसे कैसे मालूम होता है? उसका हृदय ही उसका पथ-प्रदर्शक है। उसी तरह से मनुष्य का हृदय भी उसका सच्चा पथ-प्रदर्शक है। यही श्रद्धा है। दूसरी सीढ़ी अनुभव की है। पतंगा दीपक की लौ से मिलना चाहता है। पर उस मिलने के लिए उसे उद्योग करना पड़ता है; ध्येय तक पहुँचने के लिए चेष्टा और यत्न करना होता है। क्या हमने उद्योग किया है? जब तक हम अपने ध्येय तक नहीं पहुँचते, चिरस्थायी शान्ति नहीं प्राप्त हो सकती है। जो फ़क़ीर और महात्मा स्वयं ध्येय तक पहुँच गए हैं उनसे सफलता की उस कुंजी को प्राप्त करने में

सहायता लीजिए जो सदा काम में लाई जा सके।

एक राजा ने एक समय अपने मुँहलगे मुसाहिबों और कार्यकर्ताओं के लिए एक मेला लगवाया। भिन्न भिन्न दूकानों पर अनेक प्रकार की वस्तुएँ सजाई गईं। बाज़ार खूब लम्बा था। राजा ने कहा, जिस वस्तु पर तुम अपना हाथ रख दोगे वह तुम्हें दे दी जायगी। लोग इच्छानुकूल वस्तु पसंद करने के लिए दूकानों पर घूमने लगे। एक से एक बढ़िया चीज़ें थीं। राजा बाज़ार के दूसरे सिरे पर बैठा था। कुछ समय लगाने के बाद हर एक ने कोई चीज़ पसंद की, और राजा की प्रतिज्ञा के अनुसार वह उसे दे दी गई। एक स्त्री जो मूर्खा मालूम होती थी, बाज़ार के एक सिरे से दूसरे सिरे तक सब चीज़ों को देखती हुई चली गई, परंतु उसने कुछ पसंद न किया। जब वह बाज़ार के दूसरे सिरे पर पहुँची तो राजा ने पूछा कि तुमने क्या पसंद किया। उसने राजा के ही सिर पर हाथ रख दिया और

उत्तर दिया, "भगवन्! मैंने आप ही को पसंद किया है। क्या अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार आप मेरे नहीं हैं?" राजा को आश्चर्य हुआ, पर वह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने कहा—हां, मैं तुम्हारा हूँ। अब बताओ तुम क्या चाहती हो? उस मूर्खा मालूम पड़नेवाली स्त्री ने उत्तर दिया— "क्या यह सारा बाजार आपका नहीं है, और क्या आप मेरे नहीं हैं?" यही सफलता की कुंजी है, और इसी से सदैव सफलता प्राप्त होगी। सफलता उस पुरुष या स्त्री का अनुकरण करेगी जिसने 'उसे' पाया है जो कि राजाओं का राजा है, उसे सफलता के पीछे दौड़ना नहीं पड़ेगा। सफलता उसके पीछे दौड़ेगी। अच्छा वह राजाओं का राजा कैसे प्राप्त हो? उनसे पूछिए जिन्होंने प्राप्त किया है। सबसे सरल मार्ग 'उसकी' संतान, मनुष्यमात्र की सेवा और (उन्हीं से) "प्रेम" है परंतु 'प्रेम' सच्चा और सेवा निष्काम होनी चाहिए।

॥ इति ॥

आध्यात्मिक जीवन के कुछ सिद्धान्त।

नीचे लिखे सिद्धान्तों को बराबर ध्यान से पढ़ना चाहिए और उनके अनुसार चलने का लगातार प्रयत्न करना चाहिए। हमारी वर्त्तमान दशा हमें कोई साधारण तथा सुगम मार्ग ग्रहण करने को बाधित करती है।

१—कोई काम छिपाकर न करो, अर्थात् जब तुम किसी ऐसे काम को करना चाहो, जो कि समाज अथवा ईश्वर के प्रति तुम्हारे संबंध के विचार से बुरा हो और तुम्हें यह मालूम पड़े कि उसे छिपाकर करने की आवश्यकता है, तो उस काम को करने का विचार तुरंत छोड़ दो।

२—कोई ऐसा काम न करो जिसके करने के बाद तुमको झूठ बोलना पड़े।

३—किसी का बुरा मत चेतो, चाहे वह किसी धर्म या किसी देश का क्यों न हो।

४—किसी निःसहाय जन अथवा जनसमूह की (ग़रीबों की) यथाशक्ति सहायता करो। यदि तुम किसी की सहायता नहीं कर सकते तो कम से कम किसी को कष्ट न दो।

५—अपने मन में कभी अकेले मत रहो, अर्थात् यह कल्पना करो कि वह सत्य—वह महान् शक्ति—सदा तुम्हारे साथ है। हर समय तुम्हारे सब वचन और सारे कर्म उसी परमेश्वर के सामने किए जाने के योग्य हों।

६—प्रतिदिन एक बार प्रातःकाल और एक बार सायंकाल प्रार्थना के लिए समय निकालो। प्रातःकाल अपने ही शब्दों में ईश्वर की कुछ इस प्रकार प्रार्थना करो—

हे जगत्पिता परमेश्वर ! मैं आपका हूँ, किसी कारण से मैं फिर शरीर में फँस गया हूँ। संसार बड़ा लुभावना और बलवान् है। मैं फिर दिन भर के लिए आज उसमें प्रवेश कर रहा हूँ। मेरा हाथ

पकड़िए और ऐसी शक्ति दीजिए जिससे मैं ठीक रास्ते पर चलूँ। मेरे चित्त में हर समय आप ही का ध्यान बना रहे। मैं बालक हूँ और अबोध हूँ। इंद्रियों द्वारा जो बुरे विचार मन में आते हैं उन्हें रोकने में मैं बिलकुल असमर्थ हूँ। इसलिए मेरा हाथ अवश्य पकड़िए और दिन भर अपने नेतृत्व और रक्षा में रखिए।

७—रात को अपनी दृष्टि अपने अन्तःकरण की ओर ले जाओ और विचारो कि कहाँ और किन-किन अवसरों पर तुममें शिथिलता आई और तुम अपने पथ से विचलित हुए। सच्चे हृदय से पश्चात्ताप करो और परमेश्वर से प्रार्थना करो कि अगली बार फिर जब वैसा अवसर आवे, तो वह तुम्हारी सहायता करें और तुम्हें गिरने से बचावें।

यदि यह समझो कि दिन में तुमसे कोई अच्छा काम हुआ है, तो उसके लिए अभिमान न करो और परमात्मा को धन्यवाद दो; क्योंकि उसी की

दया की सहायता से तुम उस काम के करने में सफल हुए हो।

८—दिन भर में जो सुख दुःख मिलें उन सबमें उसी की इच्छा का संचार समझो और सदा के लिए उसे अपने हृदयमन्दिर में प्रतिष्ठित करो।

९—अपने बंधनों और संबंधों को वैसा ही समझो जैसा कि एक नाटक का ऐक्टर (पात्र) अपने रंगमंच के सम्बन्धों को समझता है। उसकी वास्तविक स्थिति सदा एक सी रहती है, परन्तु उसका भेष बदला करता है। अर्थात् इन बन्धनों को अपने मन से बिलकुल तोड़ डालो या अपनी कल्पनाशक्ति द्वारा उन बन्धनों से स्थायी और दृढ़ सम्बन्ध स्थापित करो।

१०—कोई अच्छा काम इस आशा से न करो कि उसका बदला मिले, वरन् अपने अभिनय से मालिक को प्रसन्न करने की चेष्टा करो।

भगवान् कृष्ण से फिर मिलने के लिये

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥

—भगवद्गीता अध्याय १८

मुझमें अपना मन लगा, मेरा भक्त बन, मेरी ही पूजा कर (सब कुछ मेरे अर्पण कर दे), मुझे नमस्कार कर, फिर तू मुझे प्राप्त करेगा, मैं तुझसे सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ । तू मुझे प्रिय है ।

आध्यात्मिक सूर्य के ऊपर अहंकार का एक मोटा पर्दा पड़ा हुआ है, जब तक यह नहीं हटता, सत्य-लोक से संबन्ध जुड़ना असंभव है । ज्यों ही हमारी आँखों से यह अहंकार का पर्दा हटा कि सत्य घूँघट खोलकर नृत्य करने लगा । काले तख़्ते पर लिखी हुई बिन्दी जब अपने अस्तित्व से इन्कार करती है तो उसके इस इन्कार से काला तख़्ता प्रकट होने लगता है । इसी प्रकार मनुष्य के हृदय में जब यह विचार आया कि "'मैं' कुछ नहीं",

उसी समय सच्चे सूर्य की किरणें इस अहंभाव के मिटने से प्रकट होने लगती हैं ।

संध्या का समय है । सूर्य के डूबने से तारों का मन्द-मन्द प्रकाश पृथ्वी पर रहनेवालों के चक्षुओं को आलोकित कर रहा है । हवा रुक गई है और यमुना का बहाव बिलकुल धीमा है । इस सन्नाटे में यह शब्द सुनाई पड़ रहे हैं—"ओह ! हम कैसी अभागी हैं जो साधारण वस्तुओं के मोह के कारण अपने प्राणप्यारे से अलग पड़ी हुई हैं। यदि इस विरह का हमें पहले तनिक भी अनुभव होता, तो हम कभी इन अभागी मटकियों और मक्खन से इतना मोह न करतीं और न आज प्रातःकाल अपने प्यारे कृष्ण से मटकियों को बचा कर भागतीं । यह हमारी भूल थी कि जिसका फल हम इस समय भोग रही हैं । जब प्यारा कृष्ण ज़बर-दस्ती या प्रेम से इन मटकियों में से कुछ निकालकर मुख में रख लेता था तो हमारा सब सामान व्रज-

वासियों की दृष्टि में बड़ा मूल्यवान् हो जाता था और हाथोंहाथ बिक जाता था। आज किसी ने इसको पूछा नहीं और कोई पूछता ही क्यों, जब सब वस्तुएँ प्यारे के प्रकाश और आकर्षण से हीन हैं। क्या ऐसा अनुभव होने पर भी हम प्यारे कृष्ण से फिर भी भागेंगी या उत्साहपूर्वक उसके सम्मुख नवनति रखकर यह कह सकेंगी—हमसे भूल हुई, हमें क्षमा करो।"

परन्तु स्मरण हो आया, हम तो यमुना के इस पार हैं और प्यारे कृष्ण उस पार। उनकी स्मृति हृदय को जला रही है। हमारे जीवन ने ज्वाला-मुखी की अग्नि का रूप धारण किया है। भला उस श्याम के दर्शन कैसे हो सकते हैं, जब न नाव है, न खेनेवाला। यमुना की धारा के साथ-साथ हमारी अश्रुधारा भी मन्द और शान्तगति से चल रही है, और हृदय की आहें वायु के समान चल रही हैं। भेद इतना है कि प्राकृतिक शक्तियाँ शान्त

हैं, और हम विलाप कर रही हैं । अरे ! क्या इसी पार रहकर हमारे जविन का अन्त हो जायगा ? क्या इन अनिमेष नेत्रों को कभी उनके दर्शन न होंगे ? क्या इस दुःखसागर में डूबते हुए कोई हमारा सहायक न होगा ? क्या केवल हमारी दृष्टि और हमारे विचार ही यमुना के उस पार पहुँच सकेंगे ? क्या कभी हमारा मस्तक उन चरणकमलों पर नत न हो सकेगा ? हरे ! क्या मक्खन और मटकियों के मोह के कारण हम तुम्हारी विरहाग्नि में जल ही मरेंगी ? परन्तु इस समय हमारे हृदय में उनका मोह नहीं है । इस हृदय में केवल तुम हो या तुम्हारी स्मृति । हम नादान हैं, अबला हैं, तुम तक पहुँचने के लिए कोई साधन हमारे पास नहीं है । क्या इस समय हमें कोई वस्तु तुम तक पहुँचा सकती है ?"

इतने में गोपियों को एक नाव आती हुई मालूम होती है ?

गोपियाँ प्रसन्न होकर मल्लाह को पुकारती हैं और वह निकट आता है। एक छोटा-सा बालक है, साधारण वस्त्र पहने हुए है और कुछ घबड़ाया हुआ-सा है।

गोपियाँ—अरे मल्लाह! हमको किसी तरह पार कर दे, हमें प्यारे कृष्ण से मिलना है।

मल्लाह—मैं इस समय भूखा हूँ, मुझे क्षमा कीजिए।

गोपियाँ—तुम्हारी क्षुधानिवृत्ति की सामग्री तो हमारे पास है, तुम इस मक्खन और दूध आदि को ले सकते हो।

मल्लाह—परन्तु मैं छककर खाऊँगा।

गोपियाँ—यह बहुत है, तुम कितना खा सकते हो?

मल्लाह खाना आरम्भ करता है और ऐसा प्रतीत होता है कि वह सब खा जायगा। गोपियाँ आश्चर्य से कहती हैं कि यह मल्लाह है या शनैश्चर का अवतार।

मल्लाह—तुम इस प्रकार व्यङ्ग्यवाक्य कहोगी तो फिर मैं कदापि न खाऊँगा।

गोपियाँ—तो बचा ही क्या है जिसे न खाओगे ?

मल्लाह—मैं तुम्हारे समान निकम्मा और निर्बल तो हूँ नहीं जो बिलकुल न खाऊँ। मेरा काम तो दिन भर लोगों को पार करना है और आज तो शाम को भी आपको पार ले जाने का उद्योग कर रहा हूँ।

गोपियाँ—अब तो खूब छक गए होगे !

मल्लाह—हाँ काम चल जायगा।

गोपियाँ हँस पड़ती हैं। मल्लाह मक्खन खाने के बाद भी इनको पार ले जाना अस्वीकार करता है। गोपियाँ घबड़ाकर पूछती हैं कि अब यह इन्कार कैसा ?

मल्लाह—तुम्हारी संख्या अधिक है और मेरी नाव छोटी है। इसमें इतना स्थान नहीं है कि मटकियों के साथ तुमको बिठाया जावे। और फिर बोझ

अधिक होने से नाव डूब जाने का भी भय है ।

गोपियाँ—अच्छा तो फिर तुम्हारा मतलब क्या है?

मल्लाह—यदि पार जाना चाहती हो, तो इन मटकियों को जल में डुबा दो ।

गोपियाँ—हमको इन मटकियों से बहुत प्रेम है ।

मल्लाह—तो फिर कृष्ण से प्रेम करने की बात क्यों कहती हो ?

गोपियाँ लज्जित होकर मटकियों को जल में फेंक देती हैं, और नाव में बैठने के लिए तैयार होती हैं, परन्तु मल्लाह अब भी उनको बैठाने से इन्कार करता है ।

गोपियाँ—(हैरान होकर) अब यह आगा-पीछा कैसा ?

मल्लाह—अभी तक बोझ हलका नहीं हुआ, क्योंकि तुम्हारे पास सोने-चाँदी के बहुत भारी गहने हैं । जब तक इन्हें यमुनाजी में फेंक न दोगी, पार जाना असंभव है ।

इस पर गोपियों को क्रोध आ जाता है। वे कहती हैं कि देखो, तुमने हमारी सब चीजों का नुक़सान करा दिया और अब पार ले जाने से भी इन्कार कर रहे हो। मल्लाह कहता है कि मैंने नुक़सान नहीं किया। सारी कठिनाई इसलिए है कि तुम्हारा प्रेम अपूर्ण है। यदि तुम गहनों को भी फेंक दो तो बोझ हलका होने से प्यारे कृष्ण से जा मिलने का मार्ग अधिक सरल हो जाय। बहुत कुछ आगा-पीछा, सोच-विचार करने के बाद गोपियाँ गहनों को भी यमुनाजी में फेंक देती हैं और नाव में बैठने को तैयार हो जाती हैं, परन्तु मल्लाह उन्हें फिर रोककर कहता है कि अभी एक और बड़ी कठिनाई का सामना करना है। मैं बिना बताए नहीं रह सकता। जब मैं तुम्हें पार ले चलने के लिए आया था, यमुना इतनी ज़ोर से नहीं बहती थी। पार जाने के लिए तुममें जितनी उत्सुकता बढ़ती है, उतना ही यमुना का जल बढ़ता जाता है

और बहाव तेज़ होता जाता है। तुम्हीं इसका कारण हो, क्योंकि तुम्हारे आँसुवों के जल से यमुना में बाढ़ आ गई है। अँधेरा भी अधिक हो गया है। मेरा पेट भी पूरा नहीं भरा है और मैं निर्बल हूँ, बालक हूँ। इसलिए डर है कि कहीं इन सब कारणों से नाव डूब न जाय।

गोपियाँ—(घबड़ाकर) तो फिर रहने दो, हम न जायँगी। यदि हम ही मर गईं तो फिर कृष्ण से मिलेगा कौन ? और फिर जान-बूझकर मृत्यु के मुख में कौन जाय ?

मल्लाह—यही तो मैं कहता हूँ कि प्यारे कृष्ण के लिए क्यों व्यर्थ जीवन नष्ट करती हो।

गोपियाँ—(सावधान होकर) परन्तु क्या यह विरह मृत्यु से कम दुःखदायी है ? कदापि नहीं। अतएव हमें तो आगे बढ़ना ही है। यदि नाव डूब गई तो हम कृष्ण की यमुना में उसी के ध्यान में मग्न हो जायँगी और उसी को प्राप्त होंगी। यदि

जीवित बचीं तो फिर उस पार पहुँचकर प्यारे कृष्ण के दर्शन कर सकेंगी। हर तरह लाभ ही लाभ है।

मल्लाह—अच्छी तरह विचार लो।

गोपियाँ—बस जल्दी करो—और ज़बरदस्ती नाव में बैठ जाती हैं।

जब नाव मँझधार में पहुँचती है, तूफ़ान ज़्यादा बढ़ जाता है और नाव डगमगाने लगती है। पतवार बेकार हो जाता है। मल्लाह घबड़ाकर कहता है कि देखो, मैं कहता था कि ऐसे समय में वीरता न दिखाओ। अब यह नाव बिना डूबे न रहेगी और हम सबके जीवन का अंत यमुना की गोद में होगा।

गोपियाँ—तो फिर पीछे लौट चलो।

मल्लाह—अब तो मँझधार में हैं।

गोपियाँ—तो फिर रक्षा कैसे होगी? किनारे से यह तूफ़ान इतना भयानक नहीं जान पड़ता था। अरे केवट, अब रक्षा का क्या साधन है?

मल्लाह—मैं तो पैर कर निकल जाऊँगा, और तुम अपने कृष्ण को स्मरण करके पार हो जाओगी, परन्तु मेरी नाव व्यर्थ में डूब जायगी। तुम्हारे गहने तो कृष्ण के प्रेम में गए और मैं बेचारा बट्टे में मारा गया।

गोपियाँ—परन्तु यह बताओ कि अब बच कैसे सकते हैं? क्या यह हँसी का समय है?

मल्लाह—मैं तो तुमसे पहले ही कहता था कि इस अँधेरी और भयानक रात में इस रास्ते पर सँभल कर पैर रक्खो।

गोपियाँ—अरे मल्लाह! अब हमारी समझ में आ गया। ये सारी कठिनाइयाँ प्यारे कृष्ण की ओर चलने में आ रही हैं। यह तूफ़ान यमुना में है, और यमुना कृष्णजी की है। इसलिए यदि वह हम को डुबोना चाहते हैं, तो इससे बढ़कर और कौन-सी प्रसन्नता की बात है। और यदि वह नहीं चाहते तो यमुना हमें क्यों डुबोयेगी। हर तरह से हम

निश्चित हैं, प्रसन्न हैं और अपनी कोई हानि नहीं देखतीं।

मल्लाह—तो देखो तूफ़ान भी कम हुआ जा रहा है, बल्कि बंद हो गया है। तुम्हारी सचाई के कारण मुझे भी किनारे पर पहुँचना सरल हो गया है, नहीं तो आज मेरी नाव डूब ही जाती।

गोपियाँ—(प्रसन्न होकर) जल्दी करो, हाथ लगाये चलो ; न मालूम आज किनारा हमसे क्यों भागा जा रहा है। कब से चले हुए हैं और यमुना पार ही नहीं होती। दूसरा किनारा जितना निकट आ रहा है, उतनी ही उत्सुकता बढ़ती जाती है। पहले तो यमुनाजी, भिन्न-भिन्न वृक्ष, तारे, आकाश, पृथ्वी आदि सब दिखाई देते थे ; परन्तु अब कृष्ण में ऐसा ध्यान बँध गया है कि और सब कुछ लोप हो गया।

दिल ढूँढ़ता है फिर वही फ़ुरसत के रात दिन,
बैठे रहें तसव्वुरे जानाँ किए हुए।

माँगे है फिर किसी को लबे बाम पर हवस,
जुल्फ़े सियाह रुख़ पै परीशाँ किए हुए।
एक नौबहारे नाज़ को ताके है फिर निगाह,
चेहरा फ़रोगे मय से गुलिस्ताँ किए हुए।

"मेरा मन फिर ऐसे दिनों को चाहता है, जब कि मैं रात-दिन अपने प्रिय के रूप-सौंदर्य में मग्न बैठा रहूँ। मेरे लालायित ओष्ठ फिर उस प्रियतम के इच्छुक हैं, जिनके मुख पर काले घुँघराले बाल बिखर रहे हैं। मेरी दृष्टि फिर उसी नवविकसित यौवनयुक्त रूप की ओर लगी है, जिसका मस्त मुखमण्डल शराब के नशे की सी लालिमा से गुलाब-सा शोभायमान हो रहा है।"

अहा! किनारा आ गया, नाव कमल बन गई, पतवार का बाँस बाँसुरी हो गया और मल्लाह स्वयं श्रीकृष्ण के रूप में दिखाई देने लगा।

गोपियाँ—अरे यह क्या हुआ! हम किसको देख रही हैं? यह नाव खेनेवाला कौन था? यह

मक्खन खाकर न छकनेवाला, हमको हर रुकावट में व्यंग और प्रेम से उत्सुक करके आगे बढ़ानेवाला कौन था ? हाय रे अज्ञान ! हम जिसको मल्लाह समझती थीं, वही हमारा लक्ष्य, हमारा प्रियतम था। यमुना की बाढ़ आदि सब उसी की माया थी। मटकियों और गहनों का त्याग एक परीक्षा थी। और इन सब कठिनाइयों से पार लगानेवाला, हमारे यत्नों को सफल करनेवाला भी स्वयं वही था, या उसका प्रेम था। हम बहुत लज्जित हैं कि उसकी प्राप्ति के लिए अपनी तुच्छ वस्तुओं का त्याग करने में हमने इतना आगा-पीछा किया ; लेकिन वह हर समय किसी-न-किसी रूप में हमारे साथ था, इसलिए आगे बढ़ाए लिए आया और अंत में हम उसके सच्चे स्वरूप को जान गईं।

सारी गोपियाँ श्रीकृष्ण के चरणकमलों की ओर झुकती हैं। भगवान् उनको पकड़ लेते हैं और कहते हैं—

"तुम्हारा प्रेम अनंत है, तुम्हारा त्याग प्रशंसनीय है, सबके मोह को छोड़कर तुम मेरी हो गई हो और अब मैं सब कुछ लेकर तुम्हारा बनता हूँ। ऐ गोपियो !

कौन है जो कर सके इस वक़्[1] तेरी हमसरी[2],
मैं तेरा हूँ, मैं तेरा हूँ और तेरी यह बाँसुरी।"

इसके पश्चात् यमुना की लहर गोपियों के गहने कुछ और रत्न मिलाकर लौटा देती है।

इसी प्रकार जब हम ईश्वर-प्राप्ति के लिए सारे सम्बन्ध और सम्बन्धियों के मोह को हृदय से त्याग देते हैं, यहाँ तक कि जीवन की इच्छा और मृत्यु के भय को भी छोड़ बैठते हैं और अपना हृदय उनकी भेंट कर देते हैं तो उसी समय वे हमारे हो जाते हैं और फिर सारा संसार भी हमारा हो जाता है। तदनंतर आध्यात्मिक मार्ग की सारी अनुकूल और प्रतिकूल घटनायें प्रिय-

---

(१) समय, (२) बराबरी।

तम परमेश्वर के ही खेल मालूम पड़ने लगते हैं और कण-कण में उसका और उसकी इच्छा का प्रकाश प्रकट होने लगता है।

इसी प्रकार हम संसाररूपी यमुना के इस किनारे पर खड़े हैं और हमारा प्रियतम दूसरे किनारे पर है। इन दोनों किनारों के बीच में लहर, भँवर, तूफ़ान, बुलबुले और जल में बने हुए नाना प्रकार के टेढ़े-सीधे चित्र हैं। इनमें कोई हमें प्रिय मालूम पड़ते हैं, कोई अप्रिय। किंतु हमारा लक्ष्य तो इन सबसे भिन्न है और इसलिये इन सब बीच-वाली वस्तुओं के अनुकूल और प्रतिकूल, बढ़िया घटिया होने से हमें क्या मतलब ?

निगाहे नाज़ से उसकी हज़ारों मस्तो बेख़ुद हैं,
नशे की एक दुनिया है मुहब्बत चश्मे जानाँ की।

(अर्थ—प्रियतम के कटाक्ष से सहस्रों मस्त होकर आपे से बाहर हो गए हैं, उसके कमलनयनों की प्रेम की तरङ्गों में एक संसार बह रहा है।)

उसका सौंदर्य अनुपम है, इसलिए वह हमारा लक्ष्य है। उस हरि ने हमारा मन हर के अपने अधीन कर लिया है, इसलिए कुछ भी हो, हमें उससे मिलना ही है। वह दूसरे किनारे पर है, इसलिए हमको वहाँ जाकर उसको प्राप्त करना आवश्यक है, परंतु मार्ग की कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करना भी कोई साधारण बात नहीं है।

फिर जिस समय हमारा मन अपने प्रियतम के प्रेम से पूर्णतया भर जाता है तो मटकियों और मक्खन अर्थात् शरीर और चित्त आदि का ध्यान छूट जाता है और प्रेम के मार्ग में आनेवाली अनुकूल और प्रतिकूल स्थितियों का कोई महत्त्व नहीं रहता। ऐसी दशा में हमारी सदिच्छा अपनी उत्कंठा के बल से ज्ञानी गुरु को आकर्षित कर लेती है, "वह स्वयं ही आ जाता है।" इसके बाद सच्चा मुमुक्षु स्वभाव से ही गुरु को संबोधन करता है और उस पार जाने की इच्छा प्रकट करता है। परंतु

आध्यात्मिक गुरु इस मार्ग की भिन्न-भिन्न कठिनाइयों और कष्टों का वर्णन करता है। अर्थात् नाम, रूप, अहंकार और शरीर तथा उनके संबंधियों से वैराग्य उत्पन्न करने को कहता है। किंतु सच्चा मुमुक्षु अपने पुरातन संस्कारों से कभी तो तुरंत ही त्यागने को तैयार हो जाता है और कभी कुछ आगापीछा करने के बाद। कुछ भी हो सद्‌गुरु उसे भिन्न-भिन्न उपायों से आगे बढ़ने के लिए विवश करता है और उसके लिए शरीर और अहंकार तथा उनके संबंधों को भुला देने की सामग्री एकत्रित करता रहता है। कभी वह प्रबल वैराग्य से "मैं", "अहंकार" के नाश करने का उपदेश देता है। ऐसी स्थिति में कभी तो बुद्धि कहती है कि तेरा ही नाश हो जायगा, और इस प्रकार मुमुक्षु को डराती है, और कभी बुद्धि और प्रेम दोनों मिलकर इस नाश में अनंत जीवन का आभास पाने लगते हैं—

ज़िन्दगी मौत है और मौत है पैग़ामे बक़ा,

शमा में जल के यह फ़रमान है परवाने का ।

सोज़िशे दहर से फिर उसको तअल्लुक़ कैसा,

क़ल्ब दीवना है जिसका किसी दीवाने का ।

(अर्थ—दीपक में जलकर पतंग यह प्रमाणित करता है कि बिना प्रेम का जीवन मृत्यु है और प्रेम में मृत्यु ही जीवन है । जिसका हृदय किसी पागल के प्रेम में पागल हो रहा है, उसको संसार की कठिनाइयों से क्या भय ?)

परिणाम यह होता है कि सच्ची मुमुक्षुता या प्रेम सच्चे मुमुक्षु को आगे बढ़ाती ही जाती है और मुमुक्षु सच्चे ध्येय की प्राप्ति के लिए प्रत्येक वस्तु को अपने मन से उतारता जाता है । जब मुमुक्षु अपने शरीर, अहंकार, मन, बुद्धि और चित्त तथा उनके संबंधियों से कुछ-कुछ पृथक् हो जाता है तो वह अपने आपको दूसरे किनारे पर समझने लगता है, किंतु मार्ग में बहुधा झंझा वायु भी चला करता है, जिससे ढाढस और शांति की नाव डगमगा जाती

है निराशा का समाँ बँध जाता है। तब फिर यह अपने आपको किनारे से कुछ दूर देखता है। ऐसी दशा में मुमुक्षु अपने गुरु से इस प्रकार कहता है—
"खेद है कि आज वह नाव डूब रही है, जिसके कि मल्लाह आप हैं; आप गुरु हैं, मैं गोविन्द से मिलना चाहता हूँ और इसलिए मैंने आपको अपना गुरु बनाया है। किंतु आज मेरी सब आशाओं पर पानी फिरा जाता है; क्योंकि इन वासनाओं से छुटकारा पाने का कोई उपाय दिखाई नहीं देता और न इनके छोड़े बिना ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है।"

किश्ती शिकस्त गानें अय बादे शर्त बरखेज़—
बाशद कि बाज़ बीनं आँ यार आशनारा।

(अर्थ—हमारी नाव टूट गई है, अब अनुकूल वायु चले, तो संभव है कि हम अपने प्रियतम को फिर देखें।)

गुरो! इस समय मेरा हाथ पकड़िए, जिससे कि मैं उस सत्य को प्राप्त कर सकूँ।

इन शब्दों को सुनकर सद्गुरु कभी तो हँसी और व्यङ्ग्य की बातें कहता है और कभी भिन्न-भिन्न प्रकार के उपदेशों और संकेतों से दृढ़ता की संपत्ति प्रदान करता है। ज्ञानी गुरु को मुमुक्षु की घबड़ाहट से कुछ भी चिंता नहीं होती, क्योंकि वह परिणाम को जानता है। परंतु हँसी और मज़ाक़ से कभी मुमुक्षु से कहता—"यदि तुम्हारा हृदय इतना निर्बल था तो तुमने इस मार्ग का अवलंबन ही क्यों किया।"

बच्चों का नहीं खेल यह मैदाने मुहब्बत,
आए जो यहाँ सर से कफ़न बाँध के आए।

इस घबड़ाहट में मुमुक्षु बहुधा पीछे हटने का अर्थात् इस मार्ग के त्याग का उद्योग करने लग जाता है, परन्तु वह अपने इस व्यर्थ परिश्रम में भी असफल होता है; क्योंकि वह अब अपने पहले के भावों और विचारों से बहुत दूर हो गया है। इसलिए वह आँखों में आँसू भरकर चुप हो जाता है। अस्तु, उसको जैसे

भी हो आगे ही बढ़ना पड़ता है। परन्तु जिस समय उसको मुक्तिमार्ग की कठिनाइयों में ईश्वरीय इच्छा का पता चल जाता है तो फिर वह निडर हो जाता है, और कहता है कि अब मुझे रास्ते की विषमता और कठिनाइयों से कुछ भी भय नहीं है; क्योंकि इन सबके अन्तस्तल में या तो स्वयं भगवान् हैं या भगवान् की इच्छा का नृत्य। अतः मैं अभय हूँ।

इसके बाद मुमुक्षु ज्ञानी गुरु से नाव को आगे बढ़ाने के लिए प्रार्थना करता है और साथ ही यह कहता है कि मुझे पता लग गया है कि इस मार्ग में मर जाना सदा जीवित रहने से अत्यंत श्रेष्ठ है। अब गुरु मुमुक्षु के हृदय में स्थायी और सच्चा उत्साह देखकर प्रसन्न होता है और चुपके से इस प्रेम की नौका को किनारे की ओर ले जाता है। ज्यों-ज्यों किनारा पास आता जाता है, मुमुक्षु के हृदय की अग्नि और भी अधिक भड़क उठती है। अहंकार नष्ट होने लगता है। इस बेकली में मुमुक्षु को नाम-

रूपवाला अपना पहला जगत् भूलने लगता है और वह अपने प्रियतम के ध्यान में लग जाता है, जिसका यह फल होता है कि एकाग्रता में ईश्वर के गुणों का विचार करते-करते मुमुक्षु का (पृथक्) अस्तित्व मिटने लगता है। और उतना ही वह अपने पूर्व परिचित जगत् से धीरे-धीरे बेसुध होने लगता है; परंतु जब मुमुक्षु उस पार अर्थात् अपने लक्ष्य पर पहुँचता है तो संसार की सब वस्तुएँ आध्यात्मिक रूप धारण कर लेती हैं और अपने सद्गुरु में ही उसको अपना लक्ष्य दिखाई देने लगता है, अर्थात् उसे गुरु के स्वच्छ चित्त पर सत्य के प्रकाश की किरणें अच्छी तरह दिखने लगती हैं। तदनन्तर वह रहस्यमय सत्य इसको कण-कण से टपकता दिखाई देता है, अर्थात् जिसको यह जगत् या संसार कहता था, अब उसमें सिवाय सत्य के और कुछ नहीं रहता।

उदाहरण—जब हमारे हृदय में "अक्षार" के

अतिरिक्त और कुछ नहीं, तो हम बाहर "इकार" को कैसे पहचान सकेंगे। इसी प्रकार जब सच्चे मुमुक्षु के हृदय में सत्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं रहता तो उसको बाहर भी कोई और वस्तु कैसे दिखाई दे सकती है। यदि कोई प्रश्न करे कि बाहर तो "इकार" का अस्तित्व रहता ही है, तो इसका उत्तर यह है कि जब भीतर "इकार" का अभाव है तो बाहर के "इकार" का ज्ञान कैसे होगा? परन्तु मुमुक्षु तो इन प्रश्नोत्तरों से विरक्त रहता है; क्योंकि उसका संबन्ध तो अपने प्रियतम से है न कि किसी अन्य के अस्तित्व अथवा अनस्तित्व से। उसको अपने संतोष के लिए अपनी ही वस्तु पर्याप्त है।

दरखाना अगर कसस्त, एक हर्फ़ बसस्त।

(अर्थ—घर में यदि कोई है तो बस एक अक्षर पर्याप्त है।)

सारांश—सच्ची मुमुक्षुता से ज्ञानी गुरु मिलता है।

फिर अनेक सीढ़ियाँ और श्रेणियाँ प्रकट होती हैं। इसके पश्चात् सत्य का प्रकाश होता है, अर्थात् गुरु ही गोविन्द हो जाता है, अहंकार का नाश करना होता है और अपने संकल्प को सद्गुरु के अर्पण कर देना होता है।

मज़ा रखता है ज़ख़्मे ख़ंजरे इश्क़,
कभी ऐ बुलहवस खाया तो होता।

प्रेम-कटारी का घाव बड़ा आनन्ददायी है, अरे वासना के बंदी, तूने ऐसा घाव कभी लगने तो दिया होता (फिर देखता कैसा आनन्द आता है)।

इति।

ज्ञानरहित-बुद्धि और सच्चे प्रेम में बहस।

१—बुद्धि प्रेम से कहती है कि तू होशियार हो जा, मूढ़ता छोड़ दे।

प्रेम बुद्धि से कहता है कि तू चेत जा, नींद से जाग जा।

२—बुद्धि कहती है कि तू इन्द्रियों के सुख का, संसार के स्वाद का इच्छुक हो।

प्रेम कहता है कि तू मर्म को जान, ईश्वर को पहचान।

३—बुद्धि पूछती है कि मस्ती में, सुध-बुध भुलाने में, अहंकार के त्याग में क्या सुख है?

प्रेम कहता है कि जब तक तू अहंकार के अधीन है तब तक तुझे पता नहीं चल सकता।

४—बुद्धि कहती है कि तू आध्यात्मिक झंझट को छोड़ दे।

प्रेम कहता है कि तू अपने को इस वेदी पर बलि कर

दे, क्योंकि इस (आत्मसमर्पण) में अत्यंत आनंद है।

५—बुद्धि कहती है कि राज-सम्मान प्राप्त कर। प्रेम कहता है कि सत्य के जाने विना इस (आदर और सम्मान) में सुख कहाँ ?

६— बुद्धि कहती है कि न्याय पढ़कर विद्वान् बन जा।

प्रेम कहता है कि वाद-विवाद को छोड़कर कूटस्थ का ज्ञान प्राप्त कर, अपने को मिटाकर अक्षर को जान, जैसे पानी का बुलबुला अपने रूप को मिटाकर पानी का ज्ञान प्राप्त करता है।

७—बुद्धि कहती है कि विद्वानों में बैठकर बहस कर।

प्रेम कहता है कि सच्चा ज्ञान वाद-विवाद से प्राप्त नहीं होता, वह इन सब बातों से परे है। किसी ने कहा है—

"अगर यक सर मुए बरतर परम ;
फ़रोगे तजल्ली बसोज़द परम।"

अर्थात्, यदि एक बाल भर भी ऊपर उड़ूँ, तो उसके प्रकाश का तेज मेरे परों को जला दे। इस लिए प्रेमीजन शास्त्रार्थ नहीं करते।

८—बुद्धि कहती है कि संसार में आदर आदि प्राप्त करने की सामग्री इकट्ठा कर।

प्रेम कहता है कि हे बुद्धि, तू स्वयं उसके प्रेमपाश में बँध जा, जिससे कि बाक़ी सब झंझटों से मुक्ति प्राप्त हो जाय।

९—बुद्धि कहती है कि तू अपने स्वाद का तो वर्णन कर।

प्रेम कहता है—मेरे अन्तस्तल में खोज, अर्थात् पागलपन के रंग मे रँग जा।

१०—बुद्धि कहती है कि मेरी बातको ध्यानसे सुन।

प्रेम कहता है कि तू बकती क्या है, होश में आ, क्योंकि मैं तो इन बातों से बहुत परे हूँ।

११—बुद्धि कहती है कि तेरा दामन (वस्त्र का नीचे लटका हुआ भाग) फटा चाहता है।

प्रेम कहता है—कुछ डर की बात नहीं, क्योंकि प्रियतम का करकमल मुझ तक (दामन पकड़ने को) पहुँचा है।

१२—बुद्धि कहती है कि अरे "प्रेम" ऐसी बातों को छोड़ दे।

किंतु प्रेम कहता है कि इस भेद को जान, जिससे कि तू भी सत्यलोक का आनंद प्राप्त कर सके।

१३—बुद्धि कहती है कि मेरी समझ में नहीं आता कि तू क्या कर रहा है।

प्रेम कहता है कि मैं केवल अहंकार को मस्ती में, "अहं" में लीन कर रहा हूँ और कुछ नहीं। वास्तव में सद्बुद्धि और प्रेम में कुछ भेद नहीं, क्योंकि सच्चा ज्ञान और प्रेम दोनों एक ही हैं, परंतु मोह में पड़ी हुई बुद्धि सच्ची भावुकता को नहीं समझ सकती और इसलिए उसे सत्य से दूर रहना पड़ता है।

ॐ शम्।

श्रीमद्भगवद्गीता का रहस्य *

अर्जुन का रथ (जिसमें भगवान् श्रीकृष्णजी भी विराजमान थे) आकर शत्रुसेना के ठीक सामने खड़ा हो गया। शत्रु सेना में अर्जुन ने अपने भाई, चाचा, गुरु तथा अन्य संबंधियों को देखा।

अभी तक अर्जुन ने भगवान् श्रीकृष्ण को अच्छी तरह पहचाना नहीं था। उन्हें, केवल यही मालूम था कि भगवान् श्रीकृष्ण एक बलवान् बन्धु हैं, बस और कुछ नहीं। रणक्षेत्र में पहुँचने के पहले अर्जुन को अपनी शक्ति पर विश्वास था और वे अपने को बहुत बली समझते थे। पर वे अपने संबंधियों और बंधुओं को अपने सम्मुख लड़ने के लिए खड़े देखकर

* रविवार ता० २० दिसम्बर सन् १९३१ ई० को श्रीरामतीर्थ पब्लिकेशन सोसाइटी के स्थान में गीताजयंती के उत्सव पर श्री १०८ स्वामी भोलानाथजी द्वारा दिए गए एक व्याख्यान का सारांश।

काँप उठे और धनुष तथा बाण उनके हाथ से गिर पड़े।

हम सबों के लिए इस समय भी महाभारत का युद्ध हो रहा है। इसी संसार में सब समय भगवान् हमारे पास उपस्थित हैं। अर्जुन के समान हमें अपने संबंधियों से लड़ना है और अपने दृष्टिकोण को बदलना है। अपने संबन्धियों को नष्ट किए बिना अर्जुन संसारविजयी तथा स्वामी नहीं हो सकता था। रणक्षेत्र में आने के पहले अर्जुन को अपने बल पर अभिमान था और अपने ऊपर भरोसा था।

जब उन्हें मालूम हुआ कि हमें अपने ही संबंधियों से लड़ना पड़ेगा, तब वह झिझक गए। अपनी विद्या और ज्ञान से उनका काम न चल सका। वे स्वयं अपने को ही अपने वश में न ला सके। उन्हें दूसरे की सहायता की आवश्यकता जान पड़ी और तब उन्होंने अपने सारथी भगवान् कृष्ण से प्रार्थना की।

इसी तरह जब हम संकट में पड़ जाते हैं तब भगवान् से सहायता माँगते हैं। अर्जुन को अब मालूम हुआ कि हमारा रथ चलानेवाला एक साधारण पुरुष नहीं है। उन्होंने पहले कभी ऐसा निर्भय और बलवान् सारथी नहीं देखा था जो ऐसे बली और चंचल घोड़ों को अच्छी तरह अपने वश में रख सके।

अपने ही कर्मों पर अपना अधिकार न रख सकने पर अर्जुन को यह श्रेष्ठ जान पड़ा कि रथ के घोड़ों से भी अधिक चंचल अपने घोड़े (अर्थात् मन) की लगाम हम भगवान् कृष्ण को सौंप दें। इसलिए अर्जुन ने कहा—"मैं मूढ़ हो गया हूँ। मैं अपने संबंधियों से नहीं लड़ सकता। मेरे सारे बल का लोप हो गया है। अपने ज्ञान से मेरा काम नहीं चल सकता। अपने संबंधियों को मारकर मुझे संसार या स्वर्ग का राज्य भी नहीं चाहिए। मैं क्या करूँ? क्या आप मेरे गुरु बनकर मुझे इस समस्या को सुलझाने का ढंग बतलावेंगे।" अर्जुन और कुछ न

कह सके और उनके नेत्रों में आँसू भर आए। वही आँसू जो सांसारिक झंझटों में निराश होकर हमारे नेत्रों से बहने लगते हैं। भगवान् कृष्ण ने यह देख कर कहा—"अरे वीर अर्जुन, यह दुर्बलता और शिथि-लता कहाँ से आ गई। यह तुझे नरक में ढकेल देगी।"

फिर भगवान् बोले—"सारा संसार एक रणक्षेत्र है, जिसमें सत्य और असत्य अर्थात् धर्म और अधर्म (पाण्डवों और कौरवों) का सदा युद्ध हुआ करता है। हम सबों का जीवन बंधनों, संबंधों और नातेदारों से भरा पड़ा है। इन बंधनों में जकड़े हुए भी हमें पता है कि ईश्वर प्रेममय है, पर तो भी हम अविद्या में डूबे हुए उससे प्रेम नहीं करते। यद्यपि हमें मालूम है कि भगवान् हमारे साथ हैं, तो भी हम यह भूल जाते हैं कि वे ही हमारे रथों के संचालक हैं। इन बंधनों ने सच्ची शांति (सच्चे स्वराज्य) को हमसे छीन लिया है। जब तक हम इन जंजीरों और संबंधों को नहीं

तोड़ते तब तक असली (मन की) शांति और आनंद भी हमें नहीं मिल सकते।"

जब हम मन में विचार करते हैं तब जान पड़ता है कि यह संबंध कोई चीज नहीं हैं। इनकी क्या शक्ति है कि हमें दबा लें और हमारी उन्नति में बाधक हो सकें। पर आचरण करते समय हम सदा सिद्धांत से गिर जाते हैं। संबंधों का तोड़ना बड़ा कठिन है। जब हम उन्हें जीत नहीं पाते या जब वे हमें जीत लेते हैं तब हम शांति के असली मंदिर से कोसों दूर जा पड़ते हैं। मन की ऐसी अवस्था में अर्जुन अपने धनुष बाण को देखते हैं पर वे उनका उपयोग नहीं कर सकते। विचार और मनन से कुछ काम नहीं चलता। वे अपने को असमर्थ पाते हैं। वे भगवान् कृष्ण की ओर मुड़ते हैं और उनसे प्रार्थना करते हैं—"भगवन्! मैं अपनी साधारण शक्तियों से इस रणक्षेत्र में विजय नहीं प्राप्त कर सकता। इसलिए मैं युद्ध नहीं करूँगा। मैं अपने

संबंधों को नहीं तोड़ सकता। यह संबंध मुझे शांति से भी अधिक प्यारे हैं। यद्यपि यह संबंध सांसारिक प्रेम के बाणों से मुझे प्रतिदिन बेधा करते हैं, तो भी मैं उन्हें तोड़ नहीं सकता; ऐसी दशा को पाकर जिज्ञासु सांसारिकता की ओर जाना पसंद करता है, पर आत्मज्ञान या ईश्वरज्ञान की ओर नहीं बढ़ता। किन्तु भगवान् ने अपने भक्त के उद्धार और उसकी मोक्ष का भार अपने ऊपर ले लिया है और वे ऐसी अवस्था में यह नहीं सह सकते कि उनका भक्त निराश हो जाय और उसे सच्चा स्वराज्य प्राप्त न हो। दूसरी ओर भक्त को जब यह पता चलता है कि न तो वह आत्मज्ञान के प्रयत्न को छोड़ ही सकता है और न वह अपने बल से सफल ही हो सकता है तो वह आत्मसमर्पण कर देता है, और कहता है—भगवन्! आपकी इच्छा पूर्ण हो। इस अवस्था में आध्यात्मिक गुरु पूछता है—अरे यह दुर्बलता कहाँ से आ गई? तुझे इस मार्ग पर चलने के पहले ही,

रण क्षेत्र में पहुँचने के पूर्व ही, और जिज्ञासु या ईश्वरभक्त कहलाने के पहले ही, इन कठिनाइयों का विचार कर लेना चाहिए था। अच्छा आओ, घबड़ाओ मत। मैं तुम्हारे रथ का संचालक हूँ। अब तुम मेरी इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं कर सकते। आग की लपटों में पड़कर सुलगती हुई लकड़ी बहुत देर तक सुलग सुलगकर धुआँ नहीं कर सकती, उससे अवश्य लौ निकलेगी। तुझे अपने बंधन और सम्बंध तोड़ने ही पड़ेंगे। मैं तुझे लड़ाई आरम्भ होने के पहले ही बल और बुद्धि प्रदान करूँगा।

भगवान् कहते हैं—प्रकृति स्वयं जड़ है। प्रकृति से चेतन पैदा नहीं हो सकता, न चेतन से प्रकृति पैदा हो सकती है। इन बन्धनों और संबंधों का ज्ञान ही वास्तव में अज्ञान है। इन बन्धनों का मानसिक त्याग ही सच्चा त्याग और ज्ञान है। इन बन्धनों के विचार ही तुम्हें बाँधे हुए हैं, उन्हें छोड़ दो। उन्हें उसी प्रकार त्याग दो जिस तरह पहले तुमने इन्हें जोड़ा और पुष्ट किया

था। यह बात निम्नलिखित दृष्टांत से स्पष्ट हो जायगी—

एक मनुष्य कई वर्षों तक देश के बाहर रहकर घर को लौटा। उसकी अनुपस्थिति में उसका दो वर्ष का इकलौता लड़का सात वर्ष का हो गया था। पिता विना समाचार भेजे ही वापस आ रहा था। मार्ग में उसे एक सात वर्ष का लड़का मिला; पर वह विना उसकी ओर विशेष ध्यान दिए ही आगे बढ़ गया। जब वह घर पहुँचा तब उसने अपनी स्त्री से पूछा कि पुत्र कहाँ है? वही लड़का गली से बुलाया गया और पिता ने उसे चूमा, प्यार किया और खिलौने दिए, क्योंकि अब तो उसे मालूम हो गया कि यह मेरा लड़का है। बस, इसी तरह संबंध जोड़े और पुष्ट किए जाते हैं। जब इन संबंधों को आध्यात्मिक दृष्टि से देखिए तो उनका लोप हो जाता है।

हम अपनी साधारण इन्द्रियों से प्रकृति में भिन्नता देखते हैं। ईश्वरीय ज्ञान (तत्त्वज्ञान) की दृष्टि से भिन्नता में एकता प्रतीत होती है। ज्यों ही हम अनेकता

में एकता को (द्वैत में अद्वैत को) देखते या अनुभव करते हैं, त्यों ही यह स्पष्ट हो जाता है कि सब कुछ ब्रह्म में है और ब्रह्म सब में है। भक्ति का क्रियात्मक रूप (आचरण करने में) प्रायः इस प्रकार का होगा—

"भगवन्! यह शरीर आपका ही दिया हुआ है। यह सब बंधन और संबंध आपने ही बनाए हैं, आपके ही दिए हुए हैं और आपके ही सहारे यह थमे हुए हैं। मैं इनको केवल इसी लिए प्यार करता हूँ कि ये आपके दिये हुए हैं। इसलिए नहीं कि मैंने इनको जोड़ा है। जब चाहें आप इन्हें ले सकते हैं। मेरे सारे संबंध आपके ही द्वारा हैं।" ज्ञान का अर्थ यही है कि मैं अनेकता में एकता देखूँ। और किसी अन्य वस्तु को देखूँ ही नहीं। किसी शत्रु या मित्र द्वारा दी हुई कोई चीज़ समझूँ ही नहीं। सारे भेदभाव अपने मन से हटा दूँ और सारे भेदों के परे उच्च वायुमंडल में वास करूँ।

ये सारे सिद्धांत एक और ढंग से सरलता से

समझे जा सकते हैं। मैं जीव हूँ। मैं विकाररहित हूँ। जीवों के संबंध में न कोई पिता है, न कोई पुत्र; क्योंकि भगवान् ने कहा है कि जीव न कभी मरता है और न कभी पैदा होता है। इस विचार से भी सारे संबंधों का लोप हो जाता ह और हम बन्धनों और संबंधों के संसार के परे उत्तम जगत् में वास करने लगते हैं। पर मन की ऐसी अवस्था होने पर भी हम यह नहीं भूल सकते कि हमारे शरीर हैं, और हम देश तथा काल से सीमित हैं। अच्छा तो फिर इन दो संसारों में एक ही साथ कैसे रहें! इस प्रकार से——मैं रंगमंच (थियेटर) में एक पात्र के समान हूँ। मेरे दो शरीर हैं। एक तो उस पात्र का जिसका मैं अभिनय कर रहा हूँ और एक मेरा अपना भौतिक शरीर। इनमें से एक असली और एक नक़ली है।

रंगमंच पर पात्र के संबंध होते हैं। वह अभिनय भली प्रकार करता है। (देखनेवाले समझते हैं

कि यह वही है जो बनकर आया है) पर वह अपने मन में अभिनय के संबंधियों को अपना संबंधी नहीं समझता। वह समझता है कि रंगमंच के मालिक द्वारा ही मेरा इन अन्य पात्रों से संबंध है। इस संसार में भी हमें इसी तरह रहना चाहिए। हरएक पात्र जानता है कि उसके साथ दुर्व्यवहार और मृत्यु आदि अभिनय के अंग हैं और वास्तविक जीवन के विचार से उनका कोई मूल्य नहीं है। रंगमंच पर कर्म करने की आवश्यकता है, पर इन सारे कर्मों का उसके वास्तविक जीवन से कोई संबंध नहीं है। सारे कर्म करते हुए पात्र अभिनय की समाप्ति की प्रतीक्षा किया करता है। जिससे कि वह अपने कष्टदायी वस्त्र उतारकर घर जाय। अभिनय करते समय पात्र की अपनी कोई इच्छा नहीं होती। वह किसी दूसरे के विचारे हुए नाटक, किसी दूसरे का दिया हुआ अपना भाग पूरा कर रहा है। इसी प्रकार से ज्ञानी सदा जानता है कि

वह इस संसार के रंगमंच पर एक पात्र है, और ईश्वर की इच्छा के अनुसार उसे एक अभिनय करना है। वह भगवान् के इस महान् अभिनय में अपना भाग पूरा करता है। पर अभिनय में लिप्त नहीं होता। सच्चे और अनंत आनंद का एक यह भी मार्ग है।

(ओ३म्)

गुरु गोविन्दसिंहजी महाराज और उनका उपदेश।

जब तक मनुष्य अपने को परिमित और स्वयं अपनी स्वतन्त्र इच्छा से कर्मों का कर्ता समझता है तब तक वह अपने को परिमित सत्ता के क्षेत्र से बाहर नहीं कर सकता। इसका कारण यह है कि वह अपने हर एक कर्म को अपनी निज की इच्छा का कार्य समझता है। इसी से वह सदा इस बात की चिंता में रहता है कि फल अच्छा होना चाहिए और बुरा नहीं। ऐसे विचारों से घिरा हुआ वह अपनी शारीरिक और परिमित सत्ता की रक्षा तथा स्थिति चाहता है। अर्थात् ऐसा मनुष्य अपने को दुनिया और उसके विधाता से पृथक् समझता है और अपने छोटे व्यक्तित्व को सुख और आराम में रखना चाहता है। वह ईश्वर की इच्छा को कर्मों के पर्दे के पीछे छिपाने की कोशिश करता

है, जो कर्म ख़ुद उससे पैदा होते हुए मालूम पड़ते हैं, जैसे कि एक तारा ख़ुद चमकने की इच्छा से सूर्य को उदय होने से रोकने की कोशिश करे। इसी प्रकार यह मनुष्य अपनी परिमित सत्ता को बढ़ाने की इच्छा से ईश्वर की इच्छा को बिलकुल छिपाने की कोशिश करता है और इसमें अपनी ख़ुद की सफलता का रहस्य देखता है। ऐसे मनुष्यों के सब कर्म अपने स्वार्थ के लिए, अर्थात् अपनी शारीरिक सत्ता स्थिर रखने को और अचिरस्थायी सुख पाने के लिए हैं। ऐसे मनुष्य ईश्वर की इच्छा को अपनी ख़ुद की इच्छा पूरा करने के लिए त्याग देना पसन्द करते हैं।

इस प्रकार के व्यक्तियों के विपरीत कुछ महानुभाव ऐसे हैं जिनका हर एक काम ख़ुद या ख़ुदग़र्ज़ी के लेश तक से बचा हुआ होता है। वे सदा अपने को ईश्वर की इच्छा पर निछावर करने को तैयार रहते हैं, जैसे पतंगा हमेशा अपने को दीपक की

लों पर निछावर करना चाहा करता है। वह कहता है कि मैं इस वास्ते तैयार हूँ कि मेरी छोटी सी सत्ता उस वास्तविक सत्यता में मग्न हो जाय। परंतु वह महान् सत्ता स्वयं मुझे अपने में लीन नहीं करती।

उनके विचार में जीवन केवल साढ़े तीन हाथ का शरीर नहीं हैं, न उसके अन्दर चलनेवाला प्राणवायु, न इंद्रियों का सुख और न अचिरस्थायी यश या नामवरी। इसके विपरीत उनके लिए उस वास्तविक सत्यता की खातिर जीवन का त्याग करना ही जीवन है। वे इस पानी की बूँद को बचाने की चेष्टा नहीं करते। वे बूँद का भाप बन कर उड़ जाना ही सदा रहनेवाला जीवन समझते हैं। वे दीपक के बुझ जाने को ही चिरस्थायी जीवन समझते हैं। इस कारण उनके तमाम काम साधारण जीवन और उसके आरामों के नियमों से परे हैं। उनके काम प्रकृति के नियमानुसार होते हैं।

उन मनुष्यों को जो स्वार्थ से घिरे हुए हैं ऐसे लोगों के कामों को समझने में कठिनता मालूम पड़ती है ; क्योंकि वे (सांसारिक मनुष्य) अपना निज का कार्यक्रम अपनी परिमित इच्छा से बनाने के आदी हैं। वे पतंगे जो अब तक अग्नि की ज्वाला के बाहर हैं उन पतंगों के अस्तित्व को नहीं समझ सकते हैं, जो उसके अंदर चले गए हैं।

एक कवि ने कहा है—

रात अँधेरी है, नदी की लहरें भयानक हैं और भँवर अनेक हैं। जो लोग तट पर कुशलता के साथ रहते हैं वे नदी के बीच में मेरी हालत को कैसे जान सकते हैं।

कभी-कभी इन महात्माओं के कर्म भी स्वार्थ से रँगे हुए मालूम पड़ते हैं। उनको भी प्रकृति के कार्यक्रम को अपने शरीर द्वारा चलाना पड़ता है और इसलिए उन सीमाओं के भीतर रहना पड़ता है जिनसे कि वे सारे शारीरिक काम परिमित हैं, जो कि

देह के लिए ज़रूरी हैं । परन्तु उनके दिलों के भीतर स्वार्थ का लेश भी नहीं रहता । प्रमाण के लिए हम देखते हैं कि उनके त्याग बहुत ही ऊँचे दर्जे के होते हैं, जिनमें स्वार्थ की गंध भी नहीं होती । (जो मनुष्य अपने अहंकार को बनाए रखना और पुष्ट करना चाहता है, वह उसे पूर्णतया त्याग करने के लिए कैसे तैयार हो सकता है ।) तात्पर्य यह कि ऐसे महात्मा जीवन्मुक्त हैं । जीवन्मुक्त शब्द का अर्थ यह है कि मनुष्य का अहंकार उसके जीवनकाल में ही मर जाए । ऐसे पुरुष का व्यक्तित्व सत्यता (ब्रह्म) से अलग नहीं होता है । वह इस परिमित अस्तित्व की इच्छाओं से कोई वास्ता नहीं रखता । वह "मैं" और "मेरे" से रँगे हुए सब कर्मों में ईश्वर की इच्छा का प्रकाश देखता है । जीवन के उत्थान और पतन में वह अपनी परिमित सत्ता या "मैं" अथवा "मेरे" के विचारों को प्रवेश होने का अवसर नहीं देता । वह समझता है कि जो कुछ

आगे आनेवाला है वह ईश्वर की इच्छा के अनुकूल है और वह स्वयं एक चुप दर्शक के समान बना रहता है। सुखमणि साहब में महाराज ने कहा भी है--

प्रभु की आज्ञा आत्म हतावे,
जीवन्मुक्त सोऊ कहावे।
तैसा हरष तैसा इस सोग,
सदानंद तहँ नहीं वियोग॥
तैसा सुबरन तैसी माटी,
तैसा अमृत तैसी विष खाटी।
तैसा मान तैसा अपमान,
तैसा रंक तैसा राजान॥
जो बरतै सब साईं जुगत,
नानक भी परख कहे जीवन मुकत॥

जो अपने आपको ईश्वर की इच्छा पर निछावर करता है वह जीवन्मुक्त कहलाता है। उसके लिए खुशी और रंज एक से हैं। वह हमेशा सुखी रहता है और ईश्वर से कभी अलग नहीं होता। उसके लिए

जैसा सोना है वैसी ही मिट्टी है, जैसा अमृत वैसा हालाहल विष, जैसा आदर वैसा अनादर, जैसा राजा वैसा भिखारी। हे नानक, जो व्यक्ति ईश्वर से प्राप्त हुई वस्तुओं को ही उत्तम समझता है, वह जीवन्मुक्त कहलाता है। सुखमणि श्लोक ६, पौरी ७, मैकौलिफ लिखित सिक्ख मत।

दूसरे शब्दों में इसका सारांश यह है कि ऐसा व्यक्ति अपनी "मैं" और अपने "मेरे" को ईश्वर के सामने वेदी पर रख देता है और जो कुछ ईश्वर की इच्छा के फल के तौर पर प्राप्त होता है उसे स्वीकार करता है। वह अपनी परिमित सत्ता की स्वाभाविक इच्छाओं को, जब जब वे उत्पन्न होती हैं, (मन से) ईश्वर के सामने रख देता है। क्रमशः वह अपनी खुद की इच्छा को ईश्वर की इच्छा के वास्ते पूरे तौर पर त्याग करने के योग्य हो जाता है। भाप में बदलनेवाली पानी की बूँद के समान वह खुद को उस महासागर के अंदर लीन कर देता है और उसका

अहंकार ("मैं" और "मेरा") धीरे-धीरे लुप्त हो जाता है। तब वह यह मालूम करना भी छोड़ देता है कि वह एक बूँद भी है। वह अलग व्यक्तित्व का कैसे दावा कर सकता है, जब कि उसकी परिमित सत्ता लुप्त हो जाती है। इसके बाद वह महासागर उस बूँद को अपनी गोद में ले जाता है और वह एक नया शब्द उत्पन्न करती है। यह अब बूँद की आवाज़ नहीं रहती, बल्कि महासागर की आवाज़ हो जाती है। वह कहती है कि "मैं महासागर हूँ।" एक बूँद कभी यह नहीं कह सकती कि "मैं महासागर हूँ।" महासागर को कौन कह सकता है कि तुम महासागर नहीं हो। अर्थात् जब अहंकार और ममता चली जाती हैं तब वह महासत्ता चमकने लगती है और इस ज़ाहिरा परिमित व्यक्ति द्वारा अपना प्रकाश फैलाने लगती है। यह ज़रूरी नहीं है कि यह आवाज़ अपने को शब्दों की सूरत में ज़ाहिर करे। वरन् इसके विपरीत यह शक्ति और भी सुंदर मालूम

होती है जब यह सुंदर उपदेशों की अपेक्षा सुंदर कार्यों में अपने को परिणत कर लेती है। इसी तरह जब हम किसी बेसुध प्रेमी को किसी खूबसूरत ज़िन्दगी के लिए अपने को सकुटुम्ब वेदी पर आहुति होते हुए देखते हैं, तब हम इन कार्यों में जो तमाम अहंता के ख़यालों से बहुत ऊँचे और परे हैं, खुद ईश्वर के सुंदर कार्यों की धारा देखते हैं। तब हम अपने को ऐसा उद्घोषण करने से नहीं रोक सकते कि हमको अमुक व्यक्ति में कोई उच्च शक्ति काम करती हुई दिखाई पड़ रही है। इस श्रद्धा का प्रमाण यह है कि उस व्यक्ति के काम, विचार, चेष्टाएँ और त्याग हमको अपने निजी स्वार्थी कामों से मीलों दूर दिखाई पड़ते हैं। हम इस बात का स्वप्न में भी ख़याल नहीं कर सकते कि हम अपने स्वार्थ-मय जीवन के क्षेत्र में रहते और घूमते हुए भी उसी तरह के ख़यालात और कामों को अपनी कृतियों का प्रधान स्रोत बना हुआ देखेंगे। ऐसे मनुष्य

ईश्वर की सत्ता के जीवित प्रमाण हैं। जैसे आग अपने को इन्धन द्वारा प्रकट करती है, वैसे ही यह अपरिमित सत्ता अपने को ऐसे महात्माओं के पवित्र जीवनों द्वारा प्रकट करती है जिनमें अहंकार बिलकुल नहीं रहता। यदि दार्शनिक लोग ऐसे दिलों के अंदर कभी दृष्टि डालें तो वे तुरंत देखेंगे कि वह "अज्ञात" अपने को उन दिलों के भीतर स्पष्ट दिखला रहा है।

जब कोई नशे में मस्त आदमी हमारे सामने आता है तो हमको तुरंत मालूम होता है कि उसके अंदर कोई ऐसी चीज़ है जो हममें नहीं है। ऐसे महात्माओं के जीवन इस बात का स्पष्ट प्रमाण देते हैं कि उनके अंदर कोई ऐसी चीज़ है, या थी, जो हममें नहीं है। नहीं तो हम भी उन्हीं की तरह निश्चिन्त और हमेशा किसी भी चीज़ को छोड़ने या बलिदान करने को तैयार रहते। मेरी सम्मति में उन महात्माओं के जीवन ईश्वर की सत्ता

का बहुत ही साफ़ प्रमाण (जितना साफ़ प्रमाण संभव है) देते हैं। ये ही महात्मा अपने को ईश्वर के लिए पूर्णतया बलिदान करके, जैसे कि पतंगा अपने को रोशनी के लिए बलिदान करता है, इस बात को प्रमाणित करते हैं कि इस बलिदान में (जीव का) सनातन और चिरस्थायी जीवन है । यदि कोई मनुष्य संसार के दर्शन-शास्त्र पढ़कर भी ईश्वर की सत्ता का क़ायल नहीं हुआ हो तो वह इन महात्माओं के जीवनचरित पढ़े ।

एक कवि ने कहा है—

यदि बुद्धिमान् लोग इस बात को जान जायँ कि मनुष्य के दिल को उस प्यारे (ईश्वर) के केशों में लगाने से क्या ख़ुशी प्राप्त होती है, तो वे सब इस बन्धन में फँसने के लिए कोशिश करने में पागल हो जायँगे ।

कोई भी कार्य कारण के विना नहीं होता। यदि ईश्वर नहीं है तो ये महात्मा लोग किसको प्यार करते

हैं। हम नहीं कह सकते कि वे सांसारिक (भौतिक) पदार्थों के प्यार करनेवाले हैं, क्योंकि हम देखते हैं कि उन्होंने संसार (धन, शक्ति आदि) को किसी और चीज़ के लिए छोड़ दिया है। ऐसे महापुरुषों का संसार में जन्म लेना धन्य है, जिन्होंने उस अज्ञेय शक्ति के ख़ातिर अपने को बलिदान करके उससे प्राप्त होनेवाले नित्य जीवन का उदाहरण दिया है।

गुरु गोविंदसिंहजी महाराज सिक्खों में ऐसे दसवें मनुष्य थे, जिनमें ईश्वरीय प्रकाश ने अपने आप को प्रकट किया था। इस साँकल की पहली कड़ी गुरु नानकदेवजी महाराज थे और आख़िरी गुरु गोविंदसिंहजी महाराज। साधारण गणना में भी हम देखते हैं कि संख्या के अङ्क एक से शुरू होते हैं और दस पर ख़त्म होते हैं। एक और दस में अन्तर केवल शून्य का है। इसी प्रकार गुरु नानकदेवजी और गुरु गोविंदसिंहजी के जीवन में भी बहुत कम अंतर है। अर्थात् प्रथम गुरु ने

आध्यात्मिक जीवन का शब्दों में उपदेश दिया, और दशम गुरु ने ईश्वरीय प्रकाश को कर्मप्रधान जीवन में अभिव्यक्त किया। यह सुविदित है कि यह कर्म-मय जीवन शोर-गुल, लड़ाई-झगड़े और कशमकश से भरा हुआ था। गुरु नानक के उपदेशों को दसवें गुरु ने व्यावहारिक स्वरूप दे दिया, क्योंकि उनका जीवन साफ़-साफ़ कहता है—"हे राजाओं के राजा, नानक तेरी इच्छा को मानता है।" गुरु गोविंदसिंह के जीवन की असंख्य अन्य घटनाओं में से एक यह है। जब उनके आध्यात्मिक शिष्यों में से कुछ लोग युद्ध में मरकर ज़मीन पर पड़े थे, तब गुरु गोविन्दसिंह ने ईश्वर को संबोधन करके कहा—

"हे ईश्वर, ये आदमी मेरे पास तेरी बख़्शीश के तौर पर थे, इन्होंने अपने सिद्धान्तों के लिए अपनी ज़िन्दगियाँ कुर्बान की हैं। जो दौलत तैंने मेरे सुपुर्द की थी, वह अब लौटाई जाती है।"

उनके अन्दर ईश्वरीय शक्ति कितनी बलवती थी!

वह किसी चीज़ के लिए अपनी होने का दावा नहीं करते थे। इन शब्दों को ध्यान से देखिए—

"ये आदमी मेरे पास तेरी बख़्शीश थी और वे तुझे लौटाए जाते हैं।" "तेरे माल को तेरे पास वापिस लौटाने में मुझे क्या उज्र हो सकता है।"

गुरु गोविन्दसिंह का जीवन निर्भयता और ईश्वर में पूर्ण विश्वास का चित्र था। फिर जब गुरु गोविन्दसिंह-जी महाराज के सब (चारों) पुत्र अपने सिद्धान्तों के वास्ते बलिदान किए गए तब इस बलिदान से उन्होंने यह दिखाया कि जो ज़ाहिरा तौर पर शारीरिक मृत्यु थी, वही असल में अनंत जीवन है। वे आज हज़ारों भक्तों के दिलों और स्मरणों में जीवित हैं। ये सब आश्चर्यजनक कार्य "श्रद्धा" के कारण संभव थे।

सारांश यह है कि गुरु गोविन्दसिंह का जीवन शिक्षा देता है कि हमको वे कर्तव्य अवश्य पालन करने चाहिए कि जिनका विधान ईश्वरीय मार्ग पर हमें चलाने के लिए किया गया है। सुख और दुःख

को उदासीनता के साथ बराबर समझना चाहिए ; सांसारिक उन्नति या अवनति को तुच्छ ख़याल करना चाहिए और जीवन तथा मरण को केवल खेल के समान समझना चाहिए। धर्म के ईश्वरीय मार्ग पर हर एक विघ्न को हमारे प्यारे परमेश्वर की भेजी हुई किसी वस्तु के समान देखना चाहिए और हमको इसके अनुकूल होने की कोशिश करनी चाहिए। हमें बुरे कामों से बचना चाहिए। नाटक के पात्रों के समान जीवन के प्लेट फ़ार्म पर (मैदान में) हमको अपने हिस्से के पार्ट (खेल) खेलना सीखना चाहिए और उन्हें अच्छी तरह खेलना चाहिए ताकि हमारा मालिक ख़ुश हो। तब हमको नाटक-घर के वस्त्र उतारने की इजाज़त मिलेगी और हमको अपने अच्छे खेल के लिए सदा रहने-वाली (अनंत) शान्ति मिलेगी। इस प्रकार हम लोग ईश्वर के साथ अपना संबंध स्थापित करें।

शम्।

सांसारिक कामों को करते हुए भी मन की शांति कैसे प्राप्त की जाय।

एक फ़ौजी अफ़सर छुट्टी लेकर अपनी स्त्री बच्चों के साथ अपने देश को जा रहा था। समुद्र की यात्रा करते हुए एक भयानक तूफ़ान आ गया। तूफ़ान प्रतिक्षण बढ़ता ही जाता था और लहरें भी अधिक ऊंची बढ़ती जाती थीं। जहाज़ की स्थिति बहुत संकट में थी और सारे यात्री भयभीत हो रहे थे। फ़ौजी अफ़सर भगवद्‌भक्त था और उसे ईश्वर पर अत्यंत श्रद्धा थी, किंतु उसकी धर्मपत्नी एक समाजप्रिय मिलनसार स्त्री थी और संसार से उसको विशेष मोह था। तूफ़ान को और सारे यात्रियों को भयभीत देख कर वह बहुत घबड़ाई और रोने लगी। उसके पति, फ़ौजी अफ़सर ने कहा कि रोओ मत। उसने उत्तर दिया—आप कैसी व्यर्थ की बात करते हैं! सब भयमीत हो रहे हैं और

अपनी अपनी जीवन-रक्षा की चिंता में लगे हुए हैं, और आप मुझसे कहते हैं कि चुप रहो ! उसके नेत्रों से अश्रुधारा बह निकली । पति से अब और न रहा गया, उसने तलवार खींच ली और अपनी स्त्री पर चिल्लाया—"बस रोना बंद करो, नहीं तो मैं इस तलवार से तुम्हें मार डालूँगा"

स्त्री ने सिर उठाया और खिल खिलाकर हँस पड़ी और बोली—"प्रियतम, यह तलवार मुझे मार नहीं सकती ।" अब पति को आश्चर्य हुआ और उसने पूछा—"यह तुमको क्यों नहीं मार सकती ? लड़ाई में इसने बहुतों का अंत किया है, और जो काम यह पहले कर चुकी है, वह फिर भी कर सकती है । मैं ईश्वर की शपथ खाता हूँ कि यदि तुम फिर रोई तो यह तलवार तुम्हें मार डालेगी ।" स्त्री और ज़ोर से हँसी और बोली—"क्या मैंने कोई पाप किया है कि जिसका दण्ड मृत्यु है, मुझे किसी ऐसे काम की याद नहीं ।

तो फिर क्या मृत्यु मेरी निर्दोषता का दण्ड है अथवा मेरी अज्ञता का? मुझे विश्वास है कि न तो तुम्हारी तलवार मुझे मार सकती है और न तुम मुझे मार सकते हो। तलवार अचेतन और जड़ है और तुम मुझसे प्रेम करते हो। तुम मुझे हानि पहुँचाने का विचार भी नहीं कर सकते। इसी लिए तुम्हारी नंगी तलवार और तुम्हारा क्रोध भरा मुख मुझे नहीं डरा सकते। यदि मैं यह विश्वास भी कर लूं कि तुम्हारे हाथ की यह तलवार मुझे मार डालेगी, तो मैं अपने जीवन का इससे अच्छा और कौनसा अंत चाह सकती हूं कि मैं अपने प्रियतम को अपने प्राण भेंट करूं। मैं तुम्हारी प्रसन्नता के लिए ही जीती हूं और तुम्हारे हाथ से मरने में मुझे अनंत जीवन प्राप्त होगा।"

पति को आश्चर्य हुआ और उसने कहा, इसी तरह तलवार के समान, सारी प्रकृति जड़ है। तूफ़ान, भूकम्प, बीमारियां, ग़रीबी आदि स्वयं जड़

हैं और कुछ कर नहीं सकते । वे हमें क्या हानि पहुँचा सकते हैं जब कि हम जानते हैं कि उनका संचालक हमारा ईश्वर और मालिक है । वह दयालु और प्रेममय है । फिर हम क्यों भयभीत हों ?

अच्छा अब उठो और तूफ़ान से इस तरह कहो— "तेरी भयानक सूरत मुझे बेजान मालूम पड़ती है। तेरे पीछे परम प्रेममय परमात्मा छिपा खड़ा है। उससे मुझे डर नहीं लगता । यदि तुम बिना उसकी आज्ञा के आए हो तो तुम मेरा कुछ कर नहीं सकते । और यदि तुम उसी के भेजे हुए हो, तो आओ, आओ और जल्दी से इस नन्हे से दीपक को बुझा दो, क्योंकि मुझे और किसी बात से इतना सुख नहीं मिल सकता जितना कि अपने प्रियतम के लिए प्राण देने से ।" थोड़ी देर बाद तूफ़ान कम हो गया, और जहाज़ का डगमगाना भी बन्द हो गया । सारे यात्री प्रसन्न थे, पर ये स्त्री और पुरुष परमानंद में मग्न थे ।

संसार की सारी कठिनाइयों और चिंताओं के बीच में इसी रहस्य का ध्यान रखना चाहिए। संसार की कठिनाइयों और चिंताओं में उस 'परम प्रेमी' के दर्शन का प्रयत्न करना चाहिए।

यदि आपका कर्मसिद्धांत में विश्वास है, तो भी मन में शान्ति रहनी चाहिए, क्योंकि जो कुछ हमें मिला है वह हमारे ही कर्मों का फल है। फिर हाय हाय क्यों? यदि इस समय प्राप्त हुआ कांटा आप को नहीं भाता तो अगले अवसर के लिए फूलों के बीज बोइए। अच्छे कर्म करके ही सफलता की आशा कीजिए और आप के मन को शांति प्राप्त होगी।

यदि आप वेदान्ती हैं, तो फिर आप को किसी प्रकार का दुःख होना ही क्यों चाहिए? जब परब्रह्म परमेश्वर हर स्थान में और प्रकृति के हर रूप में है, तब यदि आपके शारीरिक नेत्रों के सामने तूफ़ान आता है, तो इस विश्वास से धैर्य धारण कीजिए

कि यह सब स्वप्न है, माया जाल है अथवा झूठा तमाशा है, आप केवल इसी लिए उससे अलग हैं कि तमाशा देखने का सुख अनुभव करें ।

सारांश---यह निश्चित है कि सारी कठिनाइयां और चिंताएँ हमारी श्रद्धा हीनता का फल हैं, या हमारी, प्रकृति के नियमों को उलट देने की, इच्छा का परिणाम हैं । जब आप सब घटनाओं का विधायक अपने प्रियतम को समझने लगते हैं तो उन (घटनाओं) को उलट पुलट करने की इच्छा आप में नहीं रह जाती । कष्ट भी सुख प्रतीत होने लगते हैं । कांटे फूलों से अधिक प्यारे मालूम पड़ते हैं और चिंताए संतोष में परिवर्तित होजाती हैं और मन को शांति प्राप्त हो जाती है ।

ओम् शम्

चमत्कार (करामात)

बामा सख़ुन अज़ कश्फ़ो करामात मगोयद ।
चूँ मा अज़ कश्फ़ो करामात गुज़श्तेम ॥

"मुझसे चमत्कारिक घटनाओं की बात मत कहो, मैं उनसे परे हो गया हूँ ।"

चमत्कार वह घटना या काम है जिसका कारण या परिणाम हम लोग नहीं जानते । साधारण बुद्धि उसे समझ नहीं सकती । विज्ञान आश्चर्य में पड़ जाता है । इस छोटे से जीवन में हम लोगों की साधारण शिक्षा तथा अनुभवों ने हमारे ज्ञान को परिमित कर दिया है । यदि किसी व्यक्ति-विशेष के द्वारा कोई चमत्कारिक घटना होती है, तो हम लोग कहते हैं कि यह प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध है । इस कथन से हमारा यह तात्पर्य होता है कि सर्व-शक्तिमान् और अनन्त सत्ता भी एक परिमित शक्ति है और साधारण वस्तुओं की तरह वह भी सीमा-

बद्ध है। वास्तव में हम लोग इतना ही कहने के अधिकारी हैं कि जहाँ तक हमको मालूम है, ऐसी घटना इससे पहले कभी नहीं हुई। यह कहना ठीक नहीं है कि ऐसी घटना इस प्रकार से हो ही नहीं सकती। चमत्कारिक घटनाएँ, जिन्हें हम प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध समझते हैं, उस कार्यक्षेत्र से संबंध रखती हैं जिसका हमें अब तक पता नहीं है। चमत्कारिक घटनाओं का नाम सुनकर आश्चर्य में पड़ने की कौन सी बात है, जब कि यह सारा विश्व ही, जिसे हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं, स्वयं एक भारी चमत्कार है। फिर यदि कोई नई घटना हो जाय तो उस पर क्यों आश्चर्य किया जाय? हम क्यों कहें कि यह असम्भव है?

ऋद्धि सिद्धियों का सम्बन्ध आध्यात्मिक-जीवन की उन्नति की ओर जानेवाले मार्ग की उस सीढ़ी से है जहाँ बहुत बड़ी जोखिम है। यह शक्तियाँ सत्य के सच्चे जिज्ञासुओं को सत्पथ

से विचलित करनेवाली होती हैं। जब तक हम आध्यात्मिक जीवन की ओर ध्यान नहीं देते, तब तक सांसारिक पदार्थ (समृद्धि, सम्पत्ति, यश, शक्ति आदि) हम पर अधिकार जमाए रहते हैं। इनमें से एक या कई के पीछे हम दौड़ा करते हैं और उन्हीं के प्राप्त करने में लिप्त रहते हैं। ज्यों-ज्यों हम उनके पीछे दौड़ते हैं त्यों-त्यों वे और भी दूर भागती जाती हैं। कभी-कभी अभिलषित वस्तुएँ हमें प्राप्त हो भी जाती हैं, किन्तु बहुधा हमें वे नहीं मिलतीं। अन्त में हम देखते हैं कि इस दौड़धूप से हमें सच्चा सुख नहीं मिलता। जब इस दौड़धूप से हम थक जाते हैं, तब उस सत्य की ओर गम्भीरता पूर्वक ध्यान देते हैं जो प्रत्येक धर्म का ध्येय है। इस ध्येय की ओर थोड़ा चलने पर वही सांसारिक वस्तुएँ (समृद्धि, सम्पत्ति, यश आदि) अकस्मात् (चमत्कारिक रूप से) हमारे पास आ जाती हैं। जिज्ञासु को ऐसा मालूम होने लगता है कि संसार

बद्ध है। वास्तव में हम लोग इतना ही कहने के अधिकारी हैं कि जहाँ तक हमको मालूम है, ऐसी घटना इससे पहले कभी नहीं हुई। यह कहना ठीक नहीं है कि ऐसी घटना इस प्रकार से हो ही नहीं सकती। चमत्कारिक घटनाएँ, जिन्हें हम प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध समझते हैं, उस कार्यक्षेत्र से संबंध रखती हैं जिसका हमें अब तक पता नहीं है। चमत्कारिक घटनाओं का नाम सुनकर आश्चर्य में पड़ने की कौन सी बात है, जब कि यह सारा विश्व ही, जिसे हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं, स्वयं एक भारी चमत्कार है। फिर यदि कोई नई घटना हो जाय तो उस पर क्यों आश्चर्य किया जाय? हम क्यों कहें कि यह असम्भव है?

ऋद्धि सिद्धियों का सम्बन्ध आध्यात्मिक-जीवन की उन्नति की ओर जानेवाले मार्ग की उस सीढ़ी से है जहाँ बहुत बड़ी जोखिम है। यह शक्तियाँ सत्य के सच्चे जिज्ञासुओं को सत्पथ

के सारे पदार्थ इच्छा करते ही उसे प्राप्त हो सकते हैं। संसार की सब चीज़ें यह दिखाना चाहती हैं कि वे हमारी सेवा में उपस्थित हैं। इस अवस्था में ऐसा मालूम होता है कि जिज्ञासु की विचारशक्ति ने प्रकृति पर वास्तविक विजय प्राप्त कर ली है। परन्तु यह एक विकट जाल है, यह ऐसा गढ़ा है कि जिसमें गिरकर फिर निकलना कठिन है। ईश्वरभक्त इस अवस्था को बड़ी सावधानी से पार करते हैं; क्योंकि यदि हम अपने ध्येय (सत्, ईश्वर, अद्वैत सत्ता—चाहे जिस नाम से पुकारिए) के मार्ग की इस मंज़िल से पार हो जायँ, तो फिर यह सांसारिक पदार्थ जिज्ञासु को दबा नहीं सकते। जब हम इस मंज़िल पर होते हैं तो ऐसा भास होता है कि पूजा और भक्ति द्वारा हमने प्रकृति को जीत लिया है। तब भौतिक प्रकृति (माया) फूल उठती है और कहती है—"देखो मैंने इसे फिर फाँस लिया।" इसके विपरीत ईश्वर के

सच्चे भक्त इस स्थिति और अवस्था से भी लाभ उठाते हैं और यह विचारते हैं—"मैंने आध्यात्मिक जीवन की ओर अभी ही ध्यान दिया था, इसके फल-स्वरूप मैंने इन सब शक्तियों को प्राप्त कर लिया। जब मुझे भगवान् के दर्शन और स्वयं भगवान् ही मिल जायँगे तो कैसा निःसीम आनंद मिलेगा।" यह एक दृष्टांत से स्पष्ट हो सकता है। हम एक उद्यान की ओर जा रहे हैं। मार्ग में हमको उद्यान से आती हुई शीतल, मंद और सुगन्धित समीर मिलती है। हम वहीं बैठ जाते हैं, इस सुहावनी सुगंध का आनंद लेते हैं, और कहते हैं कि यह कैसी सुंदर और कैसी मनोमोहिनी है। हम उसी जगह बैठ जाते हैं, और फिर उठकर उस उद्यान तक पहुँचने का प्रयत्न नहीं करते, जहां से वह सुगंधित समीर आ रही है। थोड़ी ही देर बाद वायु का प्रवाह बदलता, सुगंधि लोप हो जाती है। कहीं वह दिव्य आनंद भी नहीं रहता और हम आश्चर्य

में पड़े रह जाते हैं। हम फिर पूछते हैं—"वह उद्यान कहाँ और किधर है? क्या हम फिर उधर नहीं जा सकते?" परंतु अब समय निकल गया। यह हृदयविदारक परिस्थिति जिज्ञासु को सत्य से मीलों दूर फेंक देती है। किन्तु यदि सुगंधि आने पर हम सुरभित समीर का सुख भोगते हुए आगे ही बढ़ते जायँ तो स्वयं उस उद्यान में पहुँच जायँगे, जो सुगंधि का केन्द्र और स्रोत है। यहाँ असली सोमरस पीकर हम उन्मत्त और सदैव के लिए आनन्दित हो जाते हैं। इसीलिए महात्मा लोग आध्यात्मिक पद की इस विभूति (ऋद्धि-सिद्धि)-वाली मंज़िल को बड़ी सावधानी से पार करते हैं। वे इन विभूतियों को (ऋद्धि-सिद्धियों को) क्षणस्थायी, वास्तविक-आनन्द-विहीन और अन्त में दुःख देनेवाली प्रकृति का बाह्य प्रदर्शिनी स्वरूप समझते हैं। वे इस पथ में "उन्नति" या "अवनति" को घृणा की दृष्टि से देखते हैं और

कहते हैं—ख़्वाब का कासा गदाई ताजशाही एक है। यह तनज़्ज़ुल, यह तरक़्क़ी दिल तेरा बतलाए क्यों—स्वप्न में राजा का मुकुट और भिखारी का भिक्षापात्र समान महत्त्व रखते हैं, इसलिए इस उत्थान या पतन में मन लगाने से क्या लाभ ?

महात्माओं का कथन है कि परिमित क्षेत्र के भीतर जो कुछ भी उन्नति होगी वह भी संकुचित ही होगी। वे एक जलविंदु की, समुद्र की तरंग की, और नदी की सीमाओं में कोई भेद नहीं मानते। वे इन तीनों दृश्य पदार्थों में जल के अतिरिक्त और कुछ नहीं देखते। वे समय और काम (इच्छा) के बंधन से पार जाना चाहते हैं। इन्हीं सब कारणों से यह जानकर कि ये विभूतियाँ प्रकृति के गोचर विकार हैं वे उनकी परवाह नहीं करते और खुल्लमखुल्ला कहते हैं—

"बचश्मे आशक़ाँ ग़ैरज़ ख़ुदा हेच।
ज़मीनो आतिशो आबो हवा हेच॥"

भक्तों की दृष्टि में ईश्वर, सत् या चिदानन्द के अतिरिक्त और किसी का कुछ मूल्य ही नहीं है। या है भी तो नहीं के बराबर। ऋद्धि-सिद्धियों को वे जड़वाद की उपासना का एक सूक्ष्म जाल समझते हैं। इन महात्माओं के सम्पर्क में आने से साधारण व्यक्ति भी विभूतियों को घृणा की दृष्टि से देखने लगते हैं। परन्तु यह बात नहीं है कि ऐसे महात्माओं में चमत्कार दिखाने की शक्ति नहीं होती। महात्माओं में, और ऐसे लोगों में, जो कि दिखलाने के लिए सबके सामने चमत्कारिक घटनाएँ करते हैं, यह भेद है कि ऐसे लोग इन कर्मों में लिप्त और इनके आधीन रहते हैं किन्तु महात्मा इन सब शक्तियों को अपने आधीन रखते हैं। महात्माओं का यह उद्देश्य रहता है कि जो मनुष्य उनके सम्पर्क में आवे उसके ध्यान को सांसारिक जीवन से हटाकर आध्यात्मिक जीवन की ओर लगा दिया जाय। उनके सारे कार्य

अहंकार अथवा स्वार्थ से परे होते हैं। चमत्कारिक घटनाओं के करनेवाले मनुष्य उन व्यक्तियों के समान हैं, जो रास्ते ही में सुगन्धियुक्त पवन को पाकर पागल हो जाते हैं; वे वहीं बैठ जाते हैं और आगे नहीं बढ़ते। महात्मा उन लोगों के समान हैं जो उद्यान तक पहुँच चुके हैं। ऐसे महात्मा अपनी दया-दृष्टि-मात्र से दूसरों के चमत्कारिक घटनाएँ करने की शक्ति प्रदान कर सकते हैं। परन्तु उनका लक्ष्य यही होता है कि दूसरे भी उद्यान तक पहुँचाये जायँ। इन महात्माओं के दरबार में ऋद्धि-सिद्धि, विभूतियाँ सदा हाथ जोड़े खड़ी रहती हैं। और सेवा के अवसर की आकांक्षा करती रहती हैं। सारांश यह है कि चमत्कारिक घटनाओं से यह प्रतीत होता है कि हम लोगों की मस्तिष्क शक्ति से परे एक और जीवन या विश्व है जो हमको आश्चर्य में डाल सकता है, किन्तु एक ऐसी भी महान् शक्ति है जो उसे भी आश्चर्य

में डुबा सकती है। जो मनुष्य आध्यात्मिक जीवन की इस अवस्था तक पहुँच चुके हैं, वे कहते हैं—

बामा सखुन अज़ कश्फ़ो करामात मगोयद।
चूँ मा अज़ कश्फ़ो करामात गुज़श्तेम॥

मुझसे चमत्कारिक घटनाओं की बात मत कहो, मैं उनसे परे हो गया हूँ।

ॐ शम्

असली जीवन क्या है और सच्चा सुख कैसे प्राप्त हो सकता है ?

"जीवन" या "आत्मा" इस साढ़े तीन हाथ के शरीर का नाम नहीं है, जिसे कि हम चलते-फिरते देखते हैं। नाम, उपाधि और सांसारिक स्थिति में पद-वृद्धि भी असली जीवन नहीं है। न हमारी सीमित बुद्धि और न हमारा चित्त असली जीवन है। चलती हुई सांस भी जीवन नहीं है। तो फिर जीवन है क्या ?

इसी प्रश्न के उत्तर पाने के लिए दार्शनिक, ज्ञानी और अज्ञानी सभी लोग यत्न कर रहे हैं। किंतु इसका मर्म (इसकी असलियत) बड़ा अद्भुत है। साधारण रीति से देखने पर तो यह चलता-फिरता शरीर ही जीवन या आत्मा या हमारा "आपा" मालूम होता है। परंतु जब हम तत्त्व को जानने के लिए विचार करते हैं, तो यह स्पष्ट हो

जाता है कि यह शरीर स्थायी नहीं है। यह स्पष्ट ही है कि मरने के बाद यह शरीर नहीं रहता। यहाँ तक कि गहरी नींद में भी उतने समय के लिए शरीर एक प्रकार से हमसे अलग हो जाता है और कुछ काल तक उसका ध्यान छूट जाता है। गहरी नींद में न तो हम इस शरीर ही को कुछ समझते हैं और न उसके संबंधों को ही। जब एक मनुष्य गहरी नींद में सो जाता है तो न उसके मित्र उसे प्रसन्न कर सकते हैं और न उसके शत्रु उसे परेशान कर सकते हैं। क्योंकि असल में उसने अपने सब बंधनों और संबंधों को उस समय तोड़ दिया है। ऐसा मालूम होता है कि जिसे मैं यह शरीर या अपना आपा कहते हैं, वह असल में जीवन नहीं है। यदि इनमें से कोई भी जीवन होता, तो वह हर समय ऐसा ही मालूम होता रहता।

फिर, जब हम गहरी नींद में सोते हैं और हमको इस शरीर का ज्ञान नहीं रहता, तब हम अपने स्वप्न

के जगत् में अपने एक भिन्न शरीर से नाता जोड़ लेते हैं। उसी शरीर (स्वप्न के जगत् में काम आनेवाले शरीर) के संबंध से "मैं" और "मेरा" स्थापित हो जाता है और हम यही यत्न करते हैं कि इसी प्रकार से उसे स्मरण रखें। स्वप्न में यदि कोई यह कहे कि हमारा स्वप्नवाला "वह शरीर" या "वह आपा" या "वह व्यक्तित्व" बुरा है, तो हम झट क्रुद्ध हो जाते हैं। इसी प्रकार से यदि हमारे उस "शरीर", "व्यक्तित्व" या "आपे" को कोई अच्छा कहे तो हम प्रसन्न हो उठते हैं। कुछ काल के लिए हमारा वह व्यक्तित्व अपने निजी संबंधों से घिरा रहता है। तात्पर्य यह है कि उस अवस्था में भी हमें अपनी असलियत, सत्ता का ज्ञान नहीं रहता। यदि हमारा स्वप्नवाला व्यक्तित्व, हमारा असली "आपा" या "जीवन" होता, तो वह निरंतर और सदा रहता और हमें उसका ज्ञान रहता। इस सब-का यह अर्थ है कि स्वप्नवाला हमारा वह "आपा"

या "व्यक्तित्व" भी असली "जीवन" नहीं है, क्योंकि गहरी नींद में उसका भी प्रायः लोप हो जाता है।

जब हम गहरी नींद में होते हैं तब यह शरीर और उसके सारे संबंध भूल जाते हैं। तब यह व्यक्तित्व, जिसके आधार पर हम "मैं" और "मेरा" बनाते हैं, और जिसे हम इस साढ़े तीन हाथ के शरीर में सीमित करते हैं, लोप हो जाता है। शरीर, इंद्रिय, चित्त, बुद्धि यहाँ तक कि प्राण भी (जिन्हें साधारण तौर पर लोग जीवन समझते हैं) उस क्षेत्र या जगत् में घुस नहीं पाते। या दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि उस जगत् या क्षेत्र में कुछ शेष नहीं रहता। वास्तव में जो बच जाता है, वह एक प्रकार का "शून्य" है। यदि "जीवन" या "आत्मा" ऊपर लिखे हुए दोनों प्रकार में से एक का होता, तो हम समझते कि अन्य क्षणिक या अस्थायी वस्तुओं की भाँति वह भी

नाशवान् है । सत्य तो यह है कि "जीवन" इन सब क्षेत्रों से बाहर और परे है, साथ ही इनमें व्याप्त भी है ।

अच्छा अब सुनिए । जब हम गहरी नींद में सोते हैं तो क्या होता है ? शरीर, इंद्रिय, चित्त, ज्ञान आदि लोप हो जाते हैं, या दूसरे शब्दों में एक प्रकार का "शून्य" मालूम होने लगता है । अब यह प्रश्न होता है कि यह "शून्य" अपने आपको किसे दिखलाता है ? इस "शून्य" का ज्ञान किसे होता है ? यदि हम कहें कि "शून्य" स्वयं अपने आपको जानता है तो यह बात असंभव और निरर्थक मालूम होती है । भला "शून्य" को "शून्य" कैसे जानेगा ? यदि हम कहें कि कोई सत्ता है जो इस "शून्य" को जानती है, तो फिर वह सत्ता है क्या ? फिर उस ज्ञाता की व्याख्या करने के लिए भी तो हमको इंद्रिय और बुद्धि की आवश्यकता होती है । ये उस क्षेत्र में होते नहीं हैं । तो फिर

कैसे हमको इस सत्ता का ज्ञान होता है। यह तो निश्चय ही है कि उस क्षेत्र में "कुछ" है, जो इस "शून्य" को अनुभव करता है (मालूम करता है)। यदि वह "कुछ" न होता तो गहरी नींद से जाग कर कोई यह न कह सकता कि "मैं ऐसे सुख से सोया कि मुझे चारों ओर किसी वस्तु की सुध-बुध नहीं रही।" अब यह स्पष्ट है कि कोई **सत्ता** है जो इस "शून्य" को स्वीकार करती है। इस प्रकार वास्तव में "जीवन" परिवर्तन और नाश के परे है। और वह पूर्णरूप से "शांत" है। परंतु यह गुण उसी समय व्यक्त और प्रगट होंगे जब कि यह बाह्य शरीर, यह नाम, यह इंद्रिय, यह चित्त, यह बुद्धि, शोर मचाना छोड़कर चुप हो जायँ। अच्छा यह तो स्पष्ट हो ही गया कि कोई **सत्ता** है, जो इस शरीर से अलग और भिन्न है। और अलग होने से ही वह नाशरहित है। यदि वह भी एक शरीर होती तो अवश्य नाशवान् होती।

यह "व्यक्तित्व" जो इंद्रियों के जाल में फँसा हुआ है, अपने को छुड़ाकर अपनी असलियत या सत्ता में मिलकर लीन होना चाहता है। इसके लिए कई सीढ़ियां और मार्ग हैं, जो उस लक्ष्य पर पहुँचाते हैं, जैसे भक्तियोग, कर्मयोग, राजयोग, ज्ञानयोग। इनमें से हम, इस समय केवल दो का, भक्तियोग और ज्ञानयोग का विवेचन करेंगे।

भक्तियोग क्या है? वह है "प्रेम" द्वारा एक "भाग" का अपने "पूर्ण" से मिल जाना। जैसे ओस का एक कण स्वभाव से ही सागर से मिलना चाहता है और इस इच्छा की पूर्ति होती है जब कि वह पहले भाप बनकर उड़ जाता है और फिर (मेंह रूप से बरसकर) सागर से जा मिलता है, इसी प्रकार से यह अंश या "आपा", जो इस शरीर में रहता है, बिलकुल स्वाभाविक रीति से यह इच्छा रखता है कि वह उस "आपे" से मिल जाय और उसमें लीन हो जाय, जो कि इस सारे विश्व में

रहता है (व्याप रहा है)। यह स्वाभाविक इच्छा उस "असीम सत्ता" के अस्तित्व का सबसे दृढ़ प्रमाण है; क्योंकि हर एक इच्छा के लिए एक ऐसी वस्तु अवश्य होनी चाहिए, जिससे उसकी पूर्ति हो सके। हर प्रश्न के लिए कहीं-न-कहीं उत्तर अवश्य होता है। जब यह "आपा" इस भौतिक संसार के जीवन-संग्राम में शांति नहीं पाता, तब उसके सामने वह चित्र उद्घाटित होने लगता है (खुलने लगता है) जिसमें उस "सत्ता" तक पहुँचानेवाले मार्ग दिखाए हुए हैं। इस प्रकार वह उस सत्ता तक भिन्न-भिन्न प्रकार से खिंचने लगता है। दूसरे शब्दों में, यह अलग हुआ टुकड़ा अथवा "मैं" "पूर्ण सत्ता" के प्रेम भरे गुणों के ध्यान में मग्न होकर अपने आप को भूलने लगता है। यह सभी जानते हैं कि जब कोई किसी अत्यंत सुंदर वस्तु को देखने लगता है तो वह अपने को भूल जाता है। जब हम **उसका पिता** के समान, **माता** के समान या

स्वामी के समान या किसी अन्य संबंध से निरंतर ध्यान करते हैं, एकाग्र चित्त हो ध्यान की मात्रा बढ़ाते जाते हैं, तो यह बनावटी "आपा" या "अहंकार" धीरे-धीरे लोप होने लगता है। अंत में ऐसी अवस्था हो जाती है, जिसमें **उसके** ध्यान और **उसके प्रेम** में हम ऐसे मस्त हो जाते हैं कि फिर हमारे सामने और कुछ दिखाई ही नहीं देता, और हमको सच्चा आनंद प्राप्त हो जाता है। एक ऐसी अवस्था हो जाती है जब कि उसका ध्यान करते हुए हम अपना ध्यान कर ही नहीं सकते। यही ईश्वर से सच्चा मिलना या योग है। यदि हम **उससे** नाता जोड़ लें। उसी प्रकार जैसे एक **भाग** का **पूर्ण** से होता है। और प्रेमपूर्वक उसका स्मरण करने लगें और बहुधा ऐसा ही स्मरण किया करें, तो हमें **उसकी** ओर से उस (स्मरण और प्रेम) का उत्तर मिलने लगेगा। हमें नियमपूर्वक प्रतिदिन कुछ समय निकाल कर अकेले बैठना चाहिए और अपने

ही शब्दों में **ईश्वर** को कुछ इस प्रकार पुकारना चाहिए—"मैं बालक हूँ, मैं अज्ञानी हूँ। आप कृपा करके अपना प्रकाश मुझे दिखाइए, जिससे कि **आप के** ही प्रकाश से मैं **आप को** देख सकूँ।"

जितना अधिक भाव हमारी, इस बिनती में होगा, उतना ही अधिक (प्रबल) उत्तर भी उस 'सत्य' से मिलेगा। इस मार्ग में कितनी ही सीढ़ियाँ हैं किंतु इस समय इतना ही कहना पर्याप्त होगा।

दूसरा मार्ग ज्ञानयोग कहलाता है। अर्थात् वही **सत्ता**, जो इस शरीर में छिपी है, इस विश्व की सभी वस्तुओं में छिपी है। हमारे इस शरीर और सारी प्रकृति में एक ही 'सत्य' व्याप रहा है। जब कोई, एक ओर तो, अपने आप को अपने शरीर, अपनी इन्द्रियाँ, अपनी बुद्धि, अपने चित्त और अपने प्राणों से अलग तथा भिन्न देखता है, और दूसरी ओर, उस '**सत्ता**' को विश्व से भिन्न पहचानता है, तब इस प्रकार के मानसिक पार्थक्य

(असहयोग) से, वह उस **सत्ता** से मेल या योग प्राप्त कर लेता है—परन्तु उसी समय जब कि यह मानसिक क्रिया अच्छी तरह प्रौढ़ हो जाय। उदाहरण के लिए, जब कि पानी की एक बूँद यह अनुभव कर लेती है कि वह केवल (बूँद) नाम रूप की वस्तु नहीं है, वरन् असल में पानी है तब वह पानी के साथ योग प्राप्त कर लेती है, पानी में ही मिल जाती है। यह ज्ञान मार्ग है। दूसरे शब्दों में, मैं वह '**सत्ता**' हूँ, जो कि इस प्रकृति के क्रम से ऊपर और परे है और जो इस सभी गति (व्यापार) की द्रष्टा है। उस अवस्था में कोई कर्म करने का दावा नहीं कर सकता और सारे परिवर्तन का अंत हो जाता है। यों भी कह सकते हैं—'मैं' न तो यह शरीर हूँ और न यह नाम। 'मैं' उन सबसे भिन्न हूँ। इस लिए मैं आकार के परिवर्त्तन से रहित हूँ। जब कोई व्यक्ति अपने आपको इन बंधनों और सीमाओं से परे

जानने और अनुभव करने लगता है, तब वह स्वतंत्रता की मूर्ति बन जाता है।

परन्तु इस ज्ञान मार्ग का भी आरंभ भक्ति से ही होना चाहिए।

यह लक्ष्य या 'सत्य' ज्ञान और आनंद से भरा है। जब हमारा चित्त विधिपूर्वक शुद्ध हो जाता है, तब हम इस आनंद का अनुभव करने लगते हैं। दो कलावंत एक राजा के पास अपना कला-कौशल दिखाने गए। उन दोनों को एक-एक दीवाल अपनी कला दिखाने के लिए दी गई। यह दोनों दीवालें एक दूसरे के आमने सामने थीं, पर बीच में एक परदा पड़ा था, जिससे कि वे कला-वंत एक दूसरे को काम करते हुए देख न सकें। एक ने अपनी सारी योग्यता से बड़े सुंदर चित्र दीवाल पर बनाए। दूसरे ने अपनी दीवाल को खूब साफ़ किया और चमकाया और यह काम ऐसा अच्छा किया कि दीवाल एक दर्पण के समान

हो गई। जब राजा ने पहले कलावंत के बनाए हुए सुंदर चित्र उसकी दीवाल पर देखे, तो उसे ऐसी प्रसन्नता हुई कि दूसरे कलावंत की कारीगरी देखने की रुचि ही न रही। तब दूसरे कलावंत ने बीच का परदा एक-दम हटा दिया। राजा को वैसे ही सुंदर चित्र दिखाई पड़े और उसने आश्चर्य से पूछा—"अरे तुमने ये सुंदर चित्र दीवाल के सात गज़ भीतर कैसे बनाए?" दूसरे कलावंत से राजा इतना अधिक प्रसन्न हुआ कि उसने उसे भारी इनाम दिया।

इसी प्रकार, जब हमारा चित्त अनेक विचारों से रहित और शुद्ध हो जाता है, तो वह दर्पण के समान स्वच्छ हो जाता है, और इसका फल यह होता है कि विश्व का सारा ज्ञान स्वाभाविक रीति से ही उसमें आ जाता है। प्रमाण के लिए—आधुनिक काल के बड़े-बड़े वैज्ञानिकों के जीवन-चरित्रों का अध्ययन कीजिए। तब आपको

मालूम होगा कि जब-जब उनका चित्त शांत और अन्य विचारों से मुक्त हुआ तभी तब बड़े-से-बड़े आविष्कार उनके मस्तिष्क से निकले और इस 'सत्य' अनुभव द्वारा प्रकृति के भेद, गुप्त रहस्य, खुले।

ज्योंही चित्त शुद्ध हुआ कि वह सत्ता अपने आपको व्यक्त (प्रकट) करने लगी और हमको एक विशेष प्रकार का आनदंदायक मद (सरूर) मालूम होने लगा। उदाहरण के लिए—इस समय हम अकेले हैं और जीवन की अनेक चिंताओं से घिरे हैं। परंतु किसी अन्य समय अपने स्वाभाविक छलकते हुए प्रेम से ऐसा मालूम होता है कि वह **सत्ता** हमारे अन्तस्तल में है—वह सत्ता जिसने यह सारा विश्व उत्पन्न और व्यक्त किया है और जिसकी ओर इस सारी सृष्टि का कण-कण इशारा कर रहा है—ऐसे समय में हमें एक विशेष प्रकार का सरूर, मस्ती या आनंद अनुभव होता है, जिसका वर्णन नहीं हो सकता।

हमारी हीनता, इस बात का प्रमाण है कि **महानता** कहीं और ही है। जब (ईश्वर की कृपा से) हमें उस **सत्ता** का **प्रेम** प्राप्त होता है, ऐसा **प्रेम** जैसा बालक का माता के प्रति होता है, वह **प्रेम** जो भूखे को भोजन से होता है, वह **प्रेम** जो प्यासे को पानी से होता है, तब वह 'सत्य' हमारे चित्त में अपने आपको व्यक्त करता है। इससे स्वभावतः आनंद प्राप्त होता है। बस, हमें केवल यही करना है कि हम **माता** को रोकर पुकारें, वैसे ही जैसे कि कुछ दिन के लिए अकेला छोड़ा हुआ बालक अपनी माता को पुकारता है।

ओम् शम्.

ईश्वरीय प्रेम

इस संसार में हर एक व्यक्ति में किसी न किसी बात की न्यूनता है। कोई धन में सुख ढूँढ़ते हैं, कोई शक्ति में और दूसरे यश आदि में। यदि तुम उनमें से किसी से पूछो कि तुमको सुख मिल गया तो सम्भवतः वह उत्तर देगा कि अभी तक बिलकुल नहीं। परंतु दूसरा आदमी, जो मेरी लाइन में मुझसे ऊपर है, वह उसे पा चुका है। इस तरह से यह प्रश्न जारी रहता है। सुख हमारी मुट्ठी में आ आकर निकल जाता मालूम होता है, वह हमें मिलता नहीं। सुख क्या है? क्या यह कहीं है भी या नहीं? क्या यह किसी क़ीमत पर मिल सकता है और यदि ऐसा है तो कहाँ? जाहिरा तौर पर यह बाज़ार में नहीं मिल सकता। परंतु प्रकृति का संपूर्ण नियम इस बात को सूचित करता है कि

इस प्रश्न का उत्तर अवश्य होना चाहिए, क्योंकि तृप्ति के उपाय के विना कोई उत्कट इच्छा नहीं होती है। यदि हमको प्यास लगती है तो पीने के लिए पानी है। यदि हमको भूख लगती है तो भोजन मिल सकता है। हमारे कानों के लिए शब्द है। आँखों के लिए प्रकाश है। हमारे मन के लिए कुछ अवश्य होना चाहिए। आत्मा को ईश्वर के सिवाय और कोई तृप्त नहीं कर सकता। सुख ईश्वर के प्रेम का दूसरा नाम है और वह ईश्वर के प्रेमियों की सहायता द्वारा ही मिल सकता है। मन की शान्ति उनके द्वारा ही मिल सकती है, जो उसे पा चुके हैं। क्या हमने कभी ईश्वर से सचमुच प्रेम करने की कोशिश की है। क्या हमारे अनेक सांसारिक व्यापार जो सुस्त, नीरस और बेमज़ा हैं, हमें ईश्वर का मार्ग ढूँढ़ने और उस पर चलने के लिए अवसर देते हैं, या पर्याप्त शारीरिक शक्ति के साथ रहने देते

हैं ? क्या हमको ईश्वर के प्रेम की सच्ची अभिलाषा है ? ईश्वर बहुत दूर और अदृश्य क्यों है ? जो पदार्थ अदृश्य हैं वे या तो बहुत दूर हैं या बहुत नज़दीक । यह निश्चित है कि ईश्वर हमारे बहुत नज़दीक है । वह अन्तःकरण के भीतर रहता है । तुम उसे अपने भीतर ढूँढ़ो । अपने नेत्रों में आँसुओं के साथ विनीत भाव से उसे ढूँढ़ो और वह अपने आपको प्रकाशित करेगा । केवल तब तुम अनुभव करोगे कि सुख कहाँ और कैसे मिल सकता है । वह मन जो कि अखिल संसार में सुख की तलाश में भटक रहा है जैसे कभी धन में, कभी शक्ति में, कभी यश में, या घूमने में, या विश्राम में, इसी जीवन में सच्चा विश्राम-स्थान पायेगा ।

ईश्वर का यह अभिप्राय नहीं है कि संसार के पदार्थ जो उसके बनाए हुए हैं, हिक़ारत की निगाह से देखे जायँ । अगर हम लोग ऐसा करेंगे तो वह

ज़रूर नाराज़ होगा, क्योंकि क्या उसने उनको हमारे उपयोग के लिए नहीं बनाया है, जैसे माता अपने बच्चे के लिए खिलौने खरीदती है तो वह नहीं चाहती कि बच्चा उन खिलौनों को फेंक दे। अगर बच्चा उनको फेंक देता है तो वह ज़रूर उससे नाराज़ होती है। जो माता चाहती है—वह है पुत्र का प्रेम, और वह चाहती है कि वह याद रक्खे कि माता ने उसे वे खिलौने दिए हैं। इस याद के बदले माता उसे अपना प्रेम देती है। इस प्रेम का सुख अवर्णनीय है और सब शब्दों की शक्ति के बाहर है। यह उन सब भावों से ऊपर है जिनके मनुष्य आदी हैं। इन शर्तों पर माता का प्रेम कौन नहीं चाहेगा और साथ में खिलौने भी पायेगा। सुख का यह मार्ग है। सब मत-मतान्तरों के मनुष्य बिना किसी प्रकार के भय के इस मार्ग पर चल सकते हैं और जितने अधिक चलेंगे उतने ही अधिक सुखी होंगे।

माणिक

(इस दृष्टान्त में महात्माओं को माणिक बेंचनेवाला कहा है और जनसाधारण को लड़की माना है। जैसे लड़की माणिक बेंचनेवालों की ओर आकर्षित होती है, वैसे ही जन-साधारण महात्माओं की ओर खिंचते हैं।)

लड़की—माता, वे सौदागर लोग आए हैं।

माता—वे क्या बेंचते हैं?

लड़की—माणिक बेंचते हैं।

माता—तो फिर तुझे क्या मतलब?

लड़की—क्यों नहीं? मैंने माणिकों की बड़ी प्रशंसा सुनी है और एक माणिक ख़रीदने को मेरा जी चाहता है।

माता—वह तेरे किस काम आएगा?

लड़की—मैं उसे अपने कान में पहनूँगी और दुनिया के लोगों को दिखाऊँगी।

माता—उससे तुझे क्या लाभ होगा ?

लड़की—लोग समझेंगे कि मेरे पास माणिक है और वे मेरा आदर करेंगे।

इसके बाद लड़की चली गई और मां ने कहा—देखो लड़की कैसी पगली है। वह माणिक खरीदने जा रही है जब कि उसे पोत खरीदना भी नहीं आता और उसकी गांठ में पैसा भी नहीं है। थोड़ी देर में लड़की माणिक बेंचनेवालों के पास पहुँच गई और उसने अपनी माणिक खरीदने की इच्छा प्रकट की। कहा—

भाइयो, मैं एक माणिक खरीदने आई हूँ, मुझे आप एक माणिक दिखाइए।

सौदागरों ने अपने बकस खोले और उसे माणिक दिखाए। एक दूसरे से अधिक चमक रहा था।

लड़की—भाइयो, इस माणिक के क्या दाम हैं।

सौदागर—आज कल वे बड़े सस्ते हैं, क्योंकि माणिक बहुत हैं और गाहक कम।

लड़की मुस्किराई और उसने फिर माणिक के दाम पूछे ।

सौदागर——अपना शिर (जीवन) हमको दो और माणिक लो ।

यह सुनकर लड़की घर में लौट आई और उसकी बहिनों ने माणिक की बात पूछी ।

बहिनें बोलीं——हमें अपना वह माणिक दिखाओ जिसके लिए तुम ऐसे उत्साह से गई थीं । हम समझती हैं कि वह तुम्हें ज़रूर ही मिल गया होगा, क्योंकि उसे पाने की तुम्हारी इच्छा ऐसी प्रबल थी । अरी छिपाती क्यों है । तुझे ईश्वर की सौगंद, हमें दिखा दे ।

लड़की——बहिनो, मुझे तंग मत करो । वह माणिक ऐसा सुंदर नहीं निकला जैसा कि मैंने पहले समझा था । वह बहुत महँगा था और मेरे पास ख़रीदने को पैसा न था । इससे मैंने उसे नहीं ख़रीदा । बेंचनेवाले बहुत अधिक दाम माँगते थे।

मेरे तो कभी सुई भी नहीं गड़ी है और वे मेरा शिर माँगते थे। इस लिए मुझे माणिक छोड़ना पड़ा। बहिनों ने कहा--अरी मूढ़ लड़की, बड़ी लज्जा की बात है। तू सदा इंद्रियों के सुख के लिए गलियों में मारी-मारी फिरती है। झूठ क्यों बोलती है? हम जानती हैं कि माणिक बहुत सुंदर है, पर तुझे उससे इतना प्रेम नहीं है कि उसके बदले में संकट झेले, खाली बहाना करती है। तेरे पहले जिन लोगों ने माणिक खरीदा उन्हें अपना शिर देना पड़ा, अहंकार त्यागना पड़ा।

कवि ने कहा है--

"ओ बुल्लाशाह, अरे शिर के बदले भी माणिक ख़रीदने में क्यों आगा-पीछा करता है। अरे तेरे प्राण तो किसी न किसी दिन उड़ ही जायँगे, वे सदा नहीं रह सकते। उनके बदले में माणिक (ईश्वर) बहुत सस्ता है।"

यदि हम सत्य को प्राप्त करना चाहते हैं, तो

इमें उसके दाम देना ही पड़ेंगे। यह दाम हैं—

अहंकार का त्याग। उसकी प्राप्ति के लिए मन की एकाग्रता और अविचल ध्यान की जरूरत है, बस।

ओंशम्

द्वैतवाद या अद्वैतवाद ?

एक जिज्ञासु ने एक दफ़ा मुझसे पूछा—

"आप द्वैतवादी हैं या अद्वैतवादी; अर्थात् आपके मत से विश्व में ब्रह्म के सिवा और कुछ नहीं है या ईश्वर और जीव दो अलग-अलग सत्ताएँ हैं ?"

मैंने उत्तर दिया—

"जब मैं सो जाता हूँ और इस शरीर तथा उसके सम्बन्धों को छोड़ देता हूँ (अर्थात् भूल जाता हूँ) तब मैं स्वप्न में एक नया कार्य-क्षेत्र बना लेता हूँ और उस क्षेत्र के अलग पात्र होते हैं, उस क्षेत्र में विचरनेवाले, काम करनेवाले और सम्बन्ध रखनेवाले भिन्न ही होते हैं। जब मैं जागता हूँ तब मैं इस शरीर को साथ लेकर थिएटर का ऐसा खेल करने लगता हूँ। इसी तरह से जब मैं समाधि में प्रवेश करता हूँ और अहंकार को त्याग देता हूँ तो मैं अद्वैतवादी हो जाता हूँ। जब मैं इस नाम-रूप भासनेवाले संसार में लौट

आता हूँ, तब मैं द्वैतवादी हो जाता हूँ । अब आप स्वयं ही समझिए कि मैं क्या हूँ ।"

जो लोग अहंकार का पूरा त्याग कर सके हैं, उन्हें अपने लक्ष्य या ध्येय पर पहुँच जाने के लिए बधाई देना चाहिए । किंतु लक्ष्य पर पहुँच जाने का प्रमाण यह है कि फिर उन्हें कोई कष्ट न रहना चाहिए, कोई चिंता न व्यापनी चाहिए ।

कुछ लोग ऐसे भी हैं जो अपने शरीर को बनाये रखने के सिवाय, इस शारीरिक जीवन के अतिरिक्त और कोई लक्ष्य जानते ही नहीं । उन्होंने अभी अपनी यात्रा (पूर्णता की ओर) आरंभ ही नहीं की, ब्रह्म से नाता जोड़ा ही नहीं । पर हममें से अधिकांश अधर में हैं——उन्होंने जीव और ईश्वर के बीच नाता जोड़ना आरंभ कर दिया है । इस संबंध में जो आनंद है, वह अनुभव किया जा सकता है, पर उसका वर्णन नहीं हो सकता । पतंगे से पूछिए कि वह अपने को दीपक में क्यों

जलाता है ? बुलबुल से पूछिए कि वह गुलाब पर क्यों मरती है ? फ़क़ीरों और संतों से पूछिए कि वे अपना घरबार क्यों छोड़ते हैं, अनेकों कठिनाइयाँ क्यों झेलते हैं ? उन्होंने जीवन के मर्म को जान लिया है, और जो लोग कि मामूली इंद्रियों के सुख के पीछे दौड़े फिरते हैं वे कभी न कभी जानेंगे कि उन्होंने ग़लत रास्ता पकड़ा है।

एक और प्रेमी ने फिर पूछा—

"स्वामीजी, जो ईश्वर हर स्थान पर है और हम सबमें है, तो फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि कुछ लोगों की कही हुई बातें ईश्वर की वाणी है। जैसे कहा जाता है कि भगवान् कृष्ण, ईसामसीह, मुहम्मद साहब, गुरुनानक और दूसरे महात्माओं के उपदेश ईश्वरीय उपदेश हैं, मेरी बात भी ईश्वर की ही बात क्यों नहीं ?"

मैंने उत्तर दिया—

"इस बिजली के लैम्प में जो बिजली जल रही

है, वह बिजली घर से लगाकर यहाँ तक के सब तारों में है, पर यह लैम्प ही उसे व्यक्त कर सकता है, उसे प्रकाश के रूप में दिखा सकता है। इस लैम्प के भीतर शून्य है अर्थात् वायु उसमें से निकाल लिया गया है। इसी तरह महात्माओं का अहंकार बिलकुल लोप हो जाता है या प्रायः लोप हो जाता है और तब ईश्वरीय प्रकाश उनमें चमकने लगता है।

पतंगे स्वभाव से ही प्रकाश की ओर दौड़ते हैं। मनुष्य भी स्वभाव से महात्माओं की ओर झुकते हैं। बच्चा स्वभाव से ही माता से प्रेम करता है। ईश्वर हम सबमें है, पर हम सबने अभी उससे सच्चा नाता नहीं जोड़ा, इसी से हमारे चेहरों पर सच्चे जीवन का आनंद नहीं झलकता। मान लीजिए कि मुझे पता चल जाय कि एक लाख रुपए का हीरा मेरी जेब में है, फिर मेरी प्रसन्नता का क्या ठिकाना। मेरा चेहरा प्रेम और आनंद से दमक उठेगा। यदि मुझे मालूम हो जाय कि ईश्वर मेरे हृदय में

है, तो फिर मुझे पहले से (हीरा पाने से) हजार गुना आनंद क्यों न अनुभव करना चाहिए ? यदि मुझे ऐसा आनंद नहीं हो रहा है, तो फिर कुछ कमी है। मालूम पड़ता है कि मेरे बिजली के लैम्प का तार अभी बिजली घर से जुड़ा नहीं ।

तब दूसरे प्रेमी ने, जो बड़ी भक्ति से यह सब सुन रहा था, पूछा—

"स्वामीजी, ऐसा आनंद अनुभव करने के लिए मैं क्या उपाय करूँ ?"

मैंने उत्तर दिया—

"एक माता अपने ३ बरस के बच्चे को छोड़कर रसोई घर में दूध उबालने चली गई। कुछ देर बाद बालक लुढ़क पड़ा। पहले उसने एक कुरसी पकड़कर उठने की कोशिश की। कुरसी हिली और लुढ़क पड़ी। फिर बालक ने परदा पकड़ा और उठने की कोशिश की। परदा पुराना और सड़ा हुआ था, वह फट गया। तब बच्चे ने जहाँ तक बन पड़ा जोर से रोना

आरंभ किया। यद्यपि माता रसोई घर में बड़े काम में लगी हुई थी, तो भी बच्चे का रोना सुन-कर दौड़ पड़ी और उसे गोद में उठा लिया। इस प्रकार बच्चे को उठने के लिए ही माता की सहा-यता नहीं प्राप्त हुई, वरन् माता ने उसे प्यार भी किया। बालक को माता का प्यार प्राप्त करने की तरकीब अब मालूम हो गई और दूसरे दिन वह फिर रोने लगा, यद्यपि वह गिरा न था। इस समय माँ केवल दाल उबाल रही थी, पर वह आई नहीं। उसे मालूम था कि बच्चा केवल बहाना कर रहा है। जब बच्चे ने पूछा—"माँ, तुम अबकी क्यों नहीं आईं?" माता ने मुस्किरा कर उत्तर दिया—

"मेरे बच्चे, मैं जानती हूँ कि कब तुम्हारा रोना असली है और कब नक़ली।"

इसी तरह यदि हम ईश्वर के सामने हर प्रातः-काल रोएँ और दर्शन देने की प्रार्थना करें—सच्चे हृदय से रोएँ और प्रार्थना करें—तो

वह विश्व की महती माता हमारे चित्त को प्रकाशित कर देगी। हमको मालूम पड़ेगा कि हमारा बोझ हलका हो गया, हमें अधिक आनंद अनुभव होगा। इस नुसखे को (दवा को) सात दिन काम में लाकर देखिए और आपको स्वयं अपने में कुछ परिवर्तन अनुभव होगा। कोरे वाद-विवाद और शास्त्रार्थ की दल-दल में हमें न फँसना चाहिए। न हमें नास्तिकता (या माया) के फंदे में आना चाहिए। बस, हमें उसी से सहायता की प्रार्थना करनी चाहिए और सहायता मिलेगी, अवश्य मिलेगी। जितना हम अपनी माता को प्यार करते हैं उससे कहीं अधिक हमारी माता हमें प्यार करती है।

ओम् शम्

शुभ समाचार

एक दिन एक प्रेमी ने, जिनका नाम मिस्टर राय है, जो लखनऊ यूनीवर्सिटी में इँगलिश के लेक्चरार हैं, स्वामीजी के पास आकर निम्नलिखित बातों की इस प्रकार सूचना दी—अर्थात् वह हाथ-मुँह धोकर श्रीस्वामी भोलानाथजी महाराज के कमरे में चले गए और वहाँ से इस शुभ वार्त्ता को साथ लाए और श्रीमान् आर० आर० खन्ना साहब रजिस्ट्रार लखनऊ यूनीवर्सिटी को लिखवाया—"इस समय शान्ति और नेकनियती की अत्यन्त आवश्यकता है। परन्तु दुर्वासनाओं और उनके प्रेरकों की चेष्टा के कारण यह दोनों लुप्त हो गई हैं। यह दिन बड़ी भारी परीक्षा के हैं और ऐसी विपत्ति आनेवाली है जैसी कि इसके पूर्व कभी नहीं आई। परन्तु विशेष-विशेष महात्माओं की उपस्थिति के कारण इस विपत्ति की अवधि को कम कर दिया गया है। जो मनुष्य परम प्रभु और उसके कल्याणकारी अनुग्रहों की इच्छा

रखते हैं, उनको यह शुभ समाचार पहुँचाया जाता है कि वे बुधवार ६ जुलाई सन् १९३२ को सिलवर उड मंसूरी में ५॥ बजे आकर श्रीस्वामी भोलानाथजी महाराज के व्याख्यान को इस विषय पर श्रवण करें और उसके पश्चात् वे अपने नाम श्रीमान् एम्. पी. खन्ना साहब को दें कि वे सारे अज्ञान के वैरियों से लड़ने को उद्यत हैं जब तक कि वे विजय और शान्ति को न प्राप्त कर लें।"

यह लेख स्वामीजी के सन्मुख रक्खा गया। थोड़ी देर स्तब्ध रहकर उन्होंने व्याख्यान देना स्वीकार किया, क्योंकि इस लेख में कोई बात श्रीस्वामीजी और उनके श्रीगुरूजी महाराज के मत के विरुद्ध न थी। वरन् यह समझा गया कि यह प्रेरणा उन्हीं की है, जो इस सेवक के द्वारा हम लोगों को पहुँचाई गई है। क्योंकि इसमें मनुष्यों को शिक्षा दी जाती है कि "वे संसार की चमकती हुई चीजों पर मोहित होकर अपने परम प्रभु को न भूलें।" यह

विज्ञापन मेरी ओर से दिया गया । इस विषय पर लगभग दो घण्टे व्याख्यान हुआ । श्रोताओं पर बड़ा प्रभाव पड़ा और अनेक भद्र पुरुषों ने अपने नाम भी लिखवाए, जिनमें हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई सभी हैं । इस अचानक प्रेरणा का उद्देश्य आध्यात्मिक ज्ञान है । इसलिए एक सभा स्थापित की गई और उसका नाम Divine Love Society, "ईश्वरीय प्रेम-सभा", रक्खा गया । इसका उद्देश्य प्रेम और सेवा है । इसके संस्थापक श्रीस्वामी भोला-नाथजी महाराज हैं, प्रेसीडेंट श्रीमान् आर० आर० खन्ना साहब हैं और रजिस्ट्रार मैं हूँ । इसलिए सब प्रेमियों को इस विषय में सूचना दी जाती है कि वे भी अपने-अपने नाम मेरे पास नीचे लिखे पते पर भेज दें, कि वे इस आध्यात्मिक राज्य में आने के लिए तैयार हैं ।

इस सभा में किसी विशेष पुरुष को महत्ता नहीं दी जा रही है, किंतु जैसे नए सदस्य परम

प्रभु से आध्यात्मिक ज्ञान के लिए प्रार्थना करेंगे वैसे ही संस्थापक से लेकर प्रत्येक सदस्य ने की है—"ईश्वरीय प्रेम-सभा" के नियम ईश्वर ने चाहा तो शीघ्र ही छपकर प्रत्येक सभासद के पास पहुँच जायँगे, जिसके साथ एक भजनावली भी होगी, जिसमें ईश्वरीय प्रेम, श्रद्धा और सेवा के विषय पर अच्छे-अच्छे सर्वमान्य, सर्वहितकारी विचार प्रकट किये गये होंगे।

आपका सेवक—**माधवप्रसाद खन्ना, रजिस्ट्रार,**

"ईश्वरीय प्रेम सभा",

Divine Love Society,

जापलिंग रोड, लखनऊ।

ओ३म्

ईश्वरीय प्रेम-सभा

के

उद्देश्य ।

(लेखक—ईश्वरीय प्रेम-सभा के संस्थापक तथा पयामे मुहब्बत के सुप्रसिद्ध लेखक श्री १०८ स्वामी भोलानाथजी महाराज, नं० १, राय प्रयागनारायण रोड, लखनऊ ।)

१. हमको और उन लोगों को जिनके साथ हम रहते और काम करते हैं, यह स्मरण दिलाना

(क) कि ईश्वर है ।

(ख) कि वह सर्व-शक्तिमान् है, (हमारे बुरे कर्मों का दण्ड देने के लिए और वास्तविक आवश्यकता के समय हमारी सहायता करने के लिए ।)

(ग) कि वह प्रेममय है, (जब हम अपने

पिछले कर्मों के लिए दया की और आगे के लिए पथप्रदर्शन की प्रार्थना करते हैं।)

(घ) कि जब तक वह अपने हृदय-मन्दिर में स्थापित न किया जायगा, मन को शान्ति नहीं मिल सकती।

२. हमको, और उन लोगों को जिनके साथ हम रहते और काम करते हैं यह स्मरण दिलाना

(क) कि जिस स्थिति में आज हम हैं उसमें ईश्वर ही ने हमें रक्खा है, हमें इस (स्थिति) को ईश्वर की देन समझ कर स्वीकार करना चाहिए।

(ख) कि जीवनसंग्राम, संसाररूपी नाटक का एक भाग है। इस नाटक में हम एक ऐक्टर (पात्र) बनाए गए हैं, और इसमें हमें अपना पार्ट खेलना है।

३. हमको, और उन लोगों को जिनके साथ हम रहते और काम करते हैं, स्मरण दिलाना

(क) कि इस शारीरिक जीवन के अतिरिक्त आध्यात्मिक जीवन भी है, जो कि शारीरिक जीवन से कहीं अधिक मधुर और अच्छा है ।

(ख) कि शारीरिक और आध्यात्मिक जीवन दोनों, पृथ्वी पर, साथ-साथ और विना एक दूसरे के विरोध के व्यतीत किए जा सकते हैं—

(ग) कि जब शारीरिक और आध्यात्मिक जीवन साथ-साथ और बिना एक दूसरे का विरोध किए हुए बिताए जायँ, तभी इस बात का अनुभव हो सकता है कि हमारा पिता ईश्वर है और मनुष्यमात्र हमारे बन्धुवर्ग हैं ।

(घ) कि आध्यात्मिक जीवन के लिए हमें जो एक शरीरधारी पथप्रदर्शक (गुरु) की आवश्यकता है, ऐसे मार्गप्रदर्शक

की जो कि मार्ग जानता हो पर यह घोषणा न करता हो कि मैं जानता हूँ।

४. हमको, और उन लोगों को जिनके साथ हम रहते और काम करते हैं, स्मरण दिलाना

(क) कि कहने से करना भला है।

(ख) कि हमारा उद्देश अपने अहंकार को नाश करना है।

(ग) कि लक्ष्य अभी बड़ी दूर है और यह नहीं मालूम कि हमारा समय कब पूरा हो जायगा।

(घ) कि प्रेम एक डोरी है जिससे हम अपने अहंकार को ईश्वर के चरणों में बाँध सकते हैं।

५. हमको, और उन लोगों को जिनके साथ हम रहते और काम करते हैं, स्मरण दिलाना

(क) कि मनुष्यमात्र ईश्वर के बच्चे हैं।

(ख) कि उन (ईश्वर के बच्चों) की निष्काम

(निःस्वार्थ) सेवा उसे भाती है ।

(ग) कि ईश्वर प्रेमियों की सेवा द्वारा ईश्वरीय जीवन से योग की सर्वोत्तम विभूति प्राप्त होती है ।

(घ) कि ईश्वरीय जीवन से योग प्राप्त होने पर, इसी पृथ्वी पर रहते हुए, सारी कठिनाइयों और चिन्ताओं से मुक्ति मिल जाती है तथा परमानंद की प्राप्ति हो जाती है ।

ओम् शम्